मणिभद्र

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ, जयपुर
का
वार्षिक मुख-पत्र

तेईसवां पुष्प

वि० सम्वत् २०३८

सम्पादक मण्डल :

मोतीलाल भडकतिया
मनोहरमल लूनावत
रणजीतसिंह भण्डारी
आर सी. शाह
राजमल सिंघी
सुशीलकुमार छजलानी
जतनमल ढड्ढा

मुद्रक :
प्रिंटिंग सेन्टर,
चौड़ा रास्ता जयपुर-3

कार्यालय :
श्री आत्मानन्द सभा भवन
घी वालों का रास्ता,
जयपुर-३०२००३

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ, जयपुर

'संघ की विभिन्न प्रवृत्तियां एवं संचालन'

☐ ☐

⊙ श्री सुमतिनाथ जिन मन्दिर, सम्वत् १७८४ में प्रतिष्ठापित २५४ वर्षीय सर्वाधिक प्राचीन मन्दिर जिसमे आठ सौ वर्ष पुरानी विभिन्न प्राचीन प्रतिमाओं सहित २१ पाषाण प्रतिमायें, अनेकों धातु प्रतिमायें, पंच परमेष्ठी के चरण व नवपदजी का पाषाण पट्ट, अधिष्ठायक देव परम प्रभावक श्री माणिभद्रजी, श्री गौतम स्वामी, आचार्य विजयहीरसूरीश्वरजी म०, आचार्य श्री विजयानन्द सूरीश्वरजी (प्रसिद्ध नाम आत्मारामजी म०) की पाषाण प्रतिमायें शासन देवी (महाकालीदेवी) एवं अम्बिकादेवी की अति प्राचीन एवं भव्य प्रतिमाओं सहित स्वर्ण मंडित सम्मेदशिखर, शत्रुंजय, नन्दीश्वर द्वीप, गिरनार, अष्टापद महातीर्थ एवं वीशस्थानक के विशाल एवं अद्भुत दर्शनीय पट्ट ।

⊙ भगवान श्री ऋषभदेव स्वामी का मन्दिर, बरखेड़ा तीर्थ जयपुर टोंक रोड पर जयपुर से ३० किलोमीटर दूर एवं शिवदासपुरा से २ किलोमीटर पर बाईं ओर स्थित बरखेड़ा ग्राम में यह प्राचीन मंदिर स्थित है । इसका इतिहास लगभग तीन सौ वर्ष पुराना बताया जाता है । प्रति वर्ष श्रीसंघ के तत्वावधान में फाल्गुन माह में वार्षिकोत्सव मनाया जाता है जिसमें प्रातःकालीन सेवा पूजा से लेकर दिन में पूजा पढ़ाने सहित मेले का आयोजन होता है । सायंकाल को साधर्मी वात्सल्य का आयोजन श्रीसंघ की तरफ से होता है । जिनेश्वर भगवान की प्रतिमा अत्यन्त भव्य और दर्शनीय है । तीर्थ स्थल सुरम्य सरोवर के किनारे स्थित होने से रमणिक तो है ही आगुन्तकों के लिए शांत वातावरण एवं आल्हादपूर्ण स्थिति का सृजन करता है ।

⊙ भगवान श्री शांतिनाथ स्वामी का मंदिर चन्दलाई यह मन्दिर भी शिवदासपुरा से २ किलोमीटर दूर दाहिनी ओर चन्दलाई कस्बे में स्थित है । इस मन्दिर की प्रतिष्ठा सम्वत १७०७ में होना ज्ञातव्य है । लगभग २५ वर्ष पूर्व से इस मन्दिर की व्यवस्था एवं संचालन इस संघ के द्वारा किया जाता है ।

○ भगवान श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी का मंदिर, जनता कालोनी, जयपुर इस मन्दिर की स्थापना डा० भागचन्दजी छाजेड़ द्वारा सन् १९५७ में की गई और सन् १९७५ में यह मन्दिर श्रीसंघ को सुपुर्द किया गया । अगस्त माह के प्रथम सप्ताह में इसका वार्षिकोत्सव सम्पन्न होता है । यहां पर भव्य मन्दिर, उपाश्रय, धर्मशाला आदि का निर्माण कार्य शीघ्र प्रारम्भ होना सम्भावित है ।

⊙ **श्री जैन कला चित्र दीर्घा :** भारतवर्ष के प्रमुख तीर्थ स्थानों में प्रतिष्ठित जिनेश्वर भगवानों एवं जिनालयों के भव्य एवं अलौकिक चित्र, जैन संस्कृति के श्रोत विभिन्न संकलनों का अपूर्व संकलन ।

⊙ **भगवान महावीर का जीवन परिचय भित्ती चित्रों में :** स्वर्ण सहित विभिन्न रंगों में कलाकार की अनूठी कला का भव्य प्रदर्शन । अल्प पठन एव दर्शन मात्र से भगवान् के जीवन में घटित घटनाओं की पूर्ण जानकारी सहित अत्यन्त कलात्मक भित्ती चित्रों के दर्शन का अलभ्य अवसर ।

⊙ **आत्मानन्द जैन सभा भवन :** विशाल उपाश्रय एवं आराधना स्थल जिसमे शासन प्रभावक विभिन्न आचार्य भगवन्तों, मुनिवृन्दो एवं समाज सेवको के चित्रों का अद्वितीय संग्रह एवं आराधना का शान्त एवं मनोरम स्थल ।

⊙ **श्री वर्धमान आयम्बिल शाला :** परम पूज्य उपाध्याय श्री धर्मसागरजी महाराज साहब की सद्प्रेरणा से सम्वत् २०१२ मे स्थापित आयम्बिल शाला । प्रतिदिन आयम्बिल की समुचित व्यवस्था के साथ उष्ण–जल की सदैव पृथक से व्यवस्था ।

आयम्बिल शाला के हाल का पुनर्निर्माण कराया गया है । इसमें ११११) रु देने वालों में उनका स्वयं का अथवा परिजनों में से किसी का भी एक फोटो लगाया जावेगा ।

⊙ **श्री आत्मानन्द जैन धार्मिक पाठशाला :** स्व० श्री चौधरी भंवर लाल जी की स्मृति में मगलचन्द ग्रुप द्वारा सहायतित बच्चों के चरित्र निर्माण एवं धार्मिक शिक्षा की सायंकालिन व्यवस्था जिसमें सुयोग्य प्रशिक्षिका द्वारा प्रशिक्षण की व्यवस्था ।

⊙ **श्री जैन श्वे० मित्र मडल पुस्तकालय एवं वाचनालय ;** श्रीमान् रतनचन्दजी कोचर के सद्-प्रयत्नों से सन १९३० में स्थापित पुस्तकालय । दैनिक, साप्ताहिक, मासिक जैन-अजैन समाचार पत्रों सहित धार्मिक पुस्तकों का विशाल संग्रह ।

⊙ **श्री सुमति ज्ञान भंडार :** प. भगवानदासजी जैन द्वारा प्रदत्त एवं अन्य-अन्य श्रोतों से प्राप्त हस्तलिखित एव दुर्लभ अन्य ग्रंथों का संग्राहालय ।

⊙ **उद्योग शाला :** महिलाओं के लिए सिलाई बुनाई प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था ।

⊙ **साधर्मी भक्ति :** साधर्मी भाई बहिनों को गुप्त रूप से सहायता पहुंचाने का सुलभ साधन । जरूरतमंद साधर्मी भाई वहिनों के भरण पोषण मे सहायक बनने, जीविकोपार्जन में सहयोग देने, शिक्षा एवं चिकित्सा हेतु सहायता देने और लेने का अद्वितीय सगम । साधर्मी भक्ति की कामना रखने वाले भाई बहिनों के लिए इस संस्था के माध्यम से गुप्त दान का अपूर्व क्षेत्र ।

⊙ **मणिभद्र :** इस संस्था का निःशुल्क वार्षिक-मुख पत्र जिसमें आचार्य भगवंतों, साधु-साध्वियों, विद्वानो, विचारकों के सारगर्भित एवं पठनिय लेखों सहित संस्था की वार्षिक विभिन्न गतिविधियो का विवरण, संस्था का वार्षिक आय व्यय का विवरण, कलात्मक चित्रों सहित विभिन्न प्रकार की हमेशा संग्रहणीय सामग्री का प्रकाशन ।

निवेदन :—उपरोक्त सभी प्रवृत्तियां एवं गतिविधियां श्री सुमतिनाथ जिनालय, आत्मानन्द सभा भवन, घी वालों का रास्ता, जयपुर में सग्रहित, संकलित एवं संचालित है जिनका अधिक से अधिक उपयोग कर लाभान्वित होने की साग्रह विनती है ।

दानदाताओं का मुक्त हस्त मे आर्थिक सहयोग एवं उनके उत्तरोत्तर विकास एवं विस्तार हेतु रचनात्मक सुझाव सदैव सादर आमन्त्रित है ।

संघ मंत्री

चित्र परिचय

२३ वे तीर्थंकर भगवान पुरुषादानी श्री जयवर्द्धन पार्श्वनाथ स्वामी

श्री सुमतिनाथ (तपागच्छ) जिन मंदिर जयपुर में श्री जयवर्द्धन पार्श्वनाथ भगवान की धरणेन्द्र पद्मावती सहित भव्य एवं मनोहारी ५१" की प्रतिमा की प्रतिष्ठा आषाढ सुदी २ सं० २०२४ को मेवाडरत्न पुज्य मुनि श्री विशाल विजयजी म० सा० (वर्तमान में आचार्य विजय विशालसेन सूरीश्वरजी) द्वारा कराई गई थी। उक्त प्रतिमा की अंजनशलाका वैशाख सुदी ६ सम्वत २०२८ को भीमेलनगर में आचार्य देव विजय रक्षसूरीश्वरजी म० सा० एवं आचार्यदेव विजय सुशीलसूरीश्वरजी म० सा० के कर कमलो मे सम्पन्न हुई थी। प्रतिमाजी के जयपुर लाये जाने के बाद आषाढ वदी १० से प्रतिष्ठा हेतु शांति स्नात्र युक्त अष्टान्हिका महोत्सव का भव्य आयोजन पुज्य मुनि श्री विशालविजयजी म० सा० की निश्रा में आयोजित हुआ था। आषाढ सुदी २ को शुभ मुहुर्त में भगवान जयवर्द्धन पार्श्वनाथ की गादीनशीनी करने का लाभ श्रीमती इचरज कंवर बाई धर्मपत्नी सेठ नरयाण-मलजी शाह ने प्राप्त किया था। प्रतिष्ठा के समय सभी नर-नारियों ने जयपुर नगर के उक्त सर्वाधिक प्राचीन मंदिर में हर खम्भे, हर काच के चित्र एवं प्रतिमाजी मे से अमी झरते देखा था। जयपुर नगर में उस समय अपने ढग का यह अनोखा अवसर था जिससे भक्त जनो की श्रद्धा दृढ हुई एवं अरिहंत भगवान की भक्ति की प्रेरणा प्राप्त हुई। भगवान जयवर्द्धन पार्श्वनाथ की उक्त प्रतिमा के दर्शन वन्दन एवं पूजा कर हजारो भाई बहिन आज भी कृत्य-कृत्य हो रहे है।

उक्त भव्य एवं मनोहरी प्रतिमा एवं मकराने के पाषाण मे युक्त शिखरबन्द आबु की कोरणी के सदृश तोरणयुक्त मनोहारी वेदी का निर्माण जयपुर के ही प्रसिद्ध कारीगरों द्वारा श्री जैन श्वे तपागच्छ संघ जयपुर द्वारा कराया गया था।

(श्री मनोहरलाल लूनावत की लेखनी से)

२३वें तीर्थंकर पुरुषादानी भगवान

श्री जयवर्द्धन पार्श्वनाथ भगवान

श्री सुमतिनाथ (तपागच्छ) जिन मंदिर, जयपुर में प्रतिष्ठित
प्रतिमाजी धरणेन्द्र पद्मावती सहित
प्रतिष्ठाकारक—आचार्य श्री विजय विशालसेन सूरीश्वरजी म० सा०
प्रतिष्ठा तिथि—आषाढ सुदी २ सं० २०२४

प्रकाशकीय

प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामी के भादवा सुदी १ को मनाए जाने वाले जन्मोत्सव के दिवस पर "मणिभद्र" के इस 23 वे पुष्प को आपकी सेवा में प्रेषित करते हुए हार्दिक प्रसन्नता है ।

श्री जैन श्वे. तपागच्छ संघ के लिए यह चातुर्मास कतिपय कारणों से विशेष सौभाग्यशाली रहा है जिनमें उल्लेखनीय है– जयपुर में प्रथम बार आचार्य भगवंत का चातुर्मास हुआ है और प० पू० आचार्य श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वर जी म० स० के समुदायवर्ती प० पू० आचार्य श्रीमद् विजय ह्रींकारसूरी-श्वरजी म० स० यहां विराजमान है वहां प० पू० आचार्य श्री विक्रम सूरीश्वर जी म० स० की समुदायवर्ती साध्वी श्री शुभोदया श्री जी म० स० आदि ठाणा (5) भी यहां विराजमान हैं । वर्षों उपरान्त साध्वी वर्ग में विशिष्ठ तपस्याये हो रही हैं जिनमें सा० श्री विशद्‌यशा श्री जी म० स० के 34 उपवास एव सा० श्री विभातयशा श्री जी म० सा० के मास क्षमण की तपस्याये विशेष उल्लेखनीय है । भक्तामर महापूजन का प्रथम बार यहां आयोजन हुआ तथा अट्ठारह अभिषेक के दिन मंदिर जी में अद्‌भुत एवं चमत्कारिक आमी झरन हुआ है । इसी प्रकार से मणिभद्र का यह 23 वां अंक भी विशेष सज-धज के साथ प्रकाशित किया जा रहा है ।

श्वे. जैन मान्यताओं एवं परम्पराओं के अनुरूप परम्परागत लेखों के अतिरिक्त कुछेक ऐतिहासिक और शोध-परक सामग्री से ओत प्रोत लेख भी इसमें संकलित किए जा सके है । आशा है कि ये पाठकों के लिए उपयोगी, ज्ञानवर्धक एवं पठन-पाठन में रुचि वर्धक सिद्ध होंगे ।

इस अंक के प्रकाशन मे लेखको, कवियों एवं विज्ञापनदाताओ सहित जिन 2 का भी सहयोग प्राप्त हुआ है उन सभी का नामोल्लेख किए बिना सम्पादक मंडल सभी के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता है । विशेष रूप से मुनि श्री भुवन सुन्दर विजयजी मा० सा० ने अपनी अत्यन्त व्यस्तता के उपरान्त भी इस अंक हेतु विशेष सामग्री उपलब्ध कराने की कृपा है उसके लिए सम्पादक मंडल आपका आभारी है ।

लेखकों के अपने विचार एवं मान्यताएं हैं । बिना किसी विवेचन और विश्लेषण के उनकी कृतियां मूल रूप मे प्रकाशित की गई हैं । अब सत्या सत्य का निर्णय पाठकों को स्वयं करना है । किसी भी प्रकार की विवादास्पद सामग्री को इस में शामिल नही करने का प्रयास किया गया है, फिर भी अनजाने में किसी की मान्यताओं के प्रतिकूल प्रतीत हो तो उसके लिए सम्पादक मंडल अग्रिम रूप से क्षमा प्रार्थी है ।

समय पर लेख प्राप्त नहीं हो सकने से आचार्य भगवन्त एवं कुछेक साधु-साध्वी वर्ग के लेख क्रम मे विवशतावश पीछे चले गए है जिनके लिए खेद है ।

भविष्य में भी पूर्ववत् सहयोग की अपेक्षा रखते हुए, शुभ कामनाओ सहित,

सम्पादक मंडल

अनुक्रमणिका

प० पू० आचार्यदेव १००८ श्रीमद् विजय पूर्णानन्दसूरीश्वरजी म० सा०

परम पूज्यपाद पंजाब देशोद्धारक न्यायाम्भोनिधि आचार्य सम्राट श्री १००८ श्रीमद् विजयानन्द सूरीश्वरजी म० सा० (प्रसिद्ध नाम श्री आत्मारामजी म० सा०) के पट्ट प्रभावक प० पू० पंजाब केसरी युगवीर आ० श्री १००८ श्रीमद् विजय वल्लभसूरीश्वरजी म०सा० के पट्टधर प० पू० मरुधर देशोद्धारक आ० श्री १००८ श्रीमद् विजय ललितसूरीश्वरजी म० सा० के पट्टधर प० पू० ज्योतिष-मार्तण्ड तपोनिधि सम्मेतशिखर आदि तीर्थोद्धारक, जिन शासन शिरोमणि, महान तपस्वी आचार्य भगवन्त श्री १००८ श्रीमद् विजय पूर्णानन्दसूरीश्वरजी म० सा०।

चित्र परिचय

प० पू० आचार्यदेव १००८ श्रीमद् विजय पूर्णानन्दसूरीश्वरजी म० सा०

परम पूज्यपाद पंजाब देशोद्धारक न्यायाम्भोनिधि आचार्य सम्राट श्री १००८ श्रीमद् विजयानन्द-सूरीश्वर जी म० सा० (प्रसिद्ध नाम श्री आत्मारामजी म० सा०) के पट्ट प्रभावक प० पू० पंजाब केसरी युगवीर आ० श्री १००८ श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वरजी म० सा० के पट्टधर प० पू० मरुधर देशोद्धारक आ० श्री १००८ श्रीमद् विजय ललित सूरीश्वरजी म० सा० के पट्टधर प० पू० ज्योतिष-मार्तण्ड तपोनिधि सम्मेत शिखर आदि तीर्थोद्धारक, जिन शासन शिरोमणि महान तपस्वी आचार्य भगवन्त श्री १००८ श्रीमद् विजय पूर्णानन्द सूरीश्वर जी म० सा० का यह चित्र उनके प्रथम पट्टधर पू० आ० श्री ह्रींकारसूरीश्वर जी म० सा० की सद्प्रेरणा से प्रकाशित किया जा रहा है।

आपके जीवन के सम्बन्ध में जो जानकारी प्राप्त हो सकी है उसके अनुसार आपका जन्म वि०सं० १९५४ की कार्तिक वुदी १३ (धनतेरस) के दिन सादडी (राणकपुर तीर्थ के समीप) में श्री सोभागचन्द जी सोलंकी तलेसरा के घर में श्रीमती वरदी बाई की कुक्षी से हुआ था। आपका जन्म नाम श्री पूनमचन्द जी रखा गया था। १७ वर्ष की अल्प आयु में ही आपने अपने परम गुरु आ० श्री विजय ललितसूरीश्वरजी म० सा० के पास बडौदा में दीक्षा ग्रहण की। कपड़वज (गुजरात) में मगसर सुदी ५ सम्वत् १९९७ को गणिपद पन्यास पद प्रदान कर आपका नाम पन्यास पूर्णानन्दविजयजी म० रखा गया। तदनन्तर सम्वत् २010 में पूना (महाराष्ट्र) में आचार्य पदवी से विभूषित कर आचार्य श्रीमद् विजय पूर्णानन्द सूरीश्वरजी म० सा० के नाम से अलंकृत किया।

आपने अपने ६८ वर्ष के दीक्षापर्याय में अनेकों जिन मंदिरों की स्थापना, प्रतिष्ठायें, अंजनशलाकायें, उपधान तप आदि कराए। बाली में सं २००६ में, पायधुनी में २००९ में बारसी में, २०१२ बेंगलोर में २०१८ में, कोयम्बतूर में सं० २०१५ में, केसरवाडीतीर्थ (मद्रास) में २०२१ में कराई गई अंजनशलाकाएं विशेष उल्लेखनीय हैं। आपने लगभग १६-१७ उपधान तप कराए। सादडी, कलापुर (जि० जालोर) आदि में जिन मंदिर बनवाए। उम्मेदपुर में बालाश्रम की स्थापना पुनः कराई। केसरवाडी पुडलतीर्थ में जिन मंदिर हेतु जमीन दिलवाई। वहां चलने वाली हिंसा बंद करवाई। बीजापुर (मारवाड) में सम्वत १९९१ में गाव के बीच पाडो को मारने की प्रथा बंद करवाई। सं० १९९९ में बडोदरा में जैन पोषधसमिति की स्थापना करवाई। सं० २००२ में सादडी में पोषध समिति की स्थापना की। बडोदरा संघ में वर्षों से चले आ रहे विवाद का समाधान करा कर संघ में एकता कायम कराते हुए श्री आत्मानन्द जैन उपाश्रय का उद्धार करवाया। सम्वत् १९८२ में अपने प्राणों की बाजी लगा कर नाडोल तीर्थ की रक्षा की।

श्री सम्मेतशिखरजी तीर्थ पर दोनों जैन आमनायों में चल रहे कटुतम विवाद के कारण कोई भी साधु साध्वी वहां पर चातुर्मास करने का साहस नहीं कर पाते थे लेकिन आपने तीर्थ रक्षार्थ कठिनतम परिषह सहते हुए भी विषम परिस्थितियों में सम्वत् २०२३ में सम्मेतशिखरजी में चातुर्मास किया। आपको वहां पर लगभग साढे ग्यारह माह तक रुकना पडा था और इसका ही फल है कि अब साधु साध्वीवृन्द वहां पर चातुर्मास काल में बिराजने लगे हैं।

आप देव द्रव्य के महान रक्षक तो थे ही, जैन शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान, ज्योतिष विद्या में पारंगत तथा महान तपस्वी भी थे। आपने अपने जीवन काल में अंतिम अवस्था तक २१ वर्षी तप की आराधनायें की। ऐसी किंवदंती है कि सैकडों वर्षों के बाद वर्षी तप के महान तपस्वी प० पू० आ० भगवन्त १००८ श्रीमद् विजयसिद्धिसूरीश्वरजी म० सा० (उम्र १०५ वर्ष) के बाद आचार्यों में प्रथम श्रेणी के महान तपस्वी आप हुए हैं।

ज्येष्ठ बदी १४ सं० २०३५ रविवार को आपने तखतगढ में अपने इस नश्वर शरीर का परित्याग किया। लगभग ८८ श्री संघो आदि ने मिल कर उम्मेदपुर में आपकी मृत देह का संस्कार किया। उम्मेदपुर बालाश्रम के परिसर में आपकी चरण पादुकाएं स्थापित की गई हैं जहां प्रतिवर्ष हजारों भक्तजन अपनी श्रद्धा के सुमन समर्पित कर कृत्य कृत्य हो रहे हैं। (श्री मोतीलाल भडकतिया की लेखनी से)

❋ मंगल प्रार्थना ❋

० श्री नवपद स्तुति (राग~मन्दाक्रान्ता)
(रचयिता—श्रा श्री विजय भुवन भानु सूरिजी)

० श्री अरिहंतो सकलहितदा, उच्च पुण्योपकारा
सिद्धो सर्वे मुर्गतिपुरीना, गामीने ध्रुवतारा (१)
० आचार्यो छे जिनधरमना, दक्ष व्यापारी शूरा,
उपाध्यायो गणधरतणा, सूत्र दाने चकोरा (२)
० साधु आतर अरि समूह ने विक्रमी थइ य दडे,
दर्शन ज्ञान हृदय मलने, मोह अ धार खडे (३)
० चारित्रे छे अघ रहित हो, जिंदगी जीव हारे,
नवपद माहे अनुप तप छे जे समाधि प्रसारे (४)
० वन्दु आवे नवपद सदा, पामवा आत्मशुद्धि,
आलबन हो मुज हृदयमा, द्यो सदा स्वच्छ बुद्धि (५)

० सामान्य जिन स्तवन—

० चरण की शरण गहू जिन तेरे, चरण की शरण ग्रहू जिन तेरे
हृदय कमल में ध्यान धरत हू, शिर तुज आण वहु जिन तेरे (१)
० तुम सम खोण्यो देव जगत मे, पायो नही कबहु जिन तेरे (२)
० तेरे गुण की जपु जप माला, अहनिश पाप दहु जिन तेरे (३)
० मेरे मन की तुम सब जानो, क्या मुख बहोत कहु जिन तेरे (४)
० कहे जश विजय करो त्यु साहिब, ज्यु भव दु ख न लहु जिन तेरे (५)

❋ पूज्य की प्रार्थना ❋

० अरिहा शरण सिद्धा शरण साहू शरण वरिए,
धम्मो शरण पानी विनये, जिन आशा शिर धरिए [१]
० अरिहा शरण मुजने होजो, आतम शुद्धि करवा,
सिद्धा शरण मुजने होजो, राग-द्वेपने हणवा [२]
० साहू शरण मुजने होजो, सयम शूरा बनवा,
धम्मो शरण मुजने होजो, भवोदधिथी तरवा [३]
० मगलमय चारेनु शरणु, सघणी आपदा टाळे,
चिदघन केरी डूबती नैया, शाश्वत नगरे वाळे [४]
० भवो भवना पापोने मारा, अ तरथी हु निंदु छु,
सर्व जिवोना सुकृतोने, अ तरथी अनुमोदु छु अरिहा शरण [५]

चित्र परिचय—

प० पू० आचार्य भगव

विजय ह्रींकार सू

सम

परमपूज्यपाद पंजाव देशोद्धारक न्या
नन्द सूरीश्वरजी म० सा० के पट्ट प्रभावक प० ।
श्रीमद् विजय वल्लभसूरीश्वरजी म० सा० के प
श्रीमद् विजय ललित सूरीश्वरजी म० सा० के
खरादि तीर्थोद्धारक, जिन शासन शिरोमणि, मह
पूर्णानन्द सूरीश्वरजी म० सा० के प्रथम पट्टधर
आचार्य देव श्री १००८ श्रीमद् विजय ह्रीकार सू
चातुर्मास हेतु यहा पर विराजमान हैं ।

३२ साल के अब तक के दीक्षा पर्याय में आप अपने गुरुवर्य की सेवा मे सलग्न रहे और उनके हर कार्य मे सहायक बने रहे। सम्मेत शिखरजी के चातुर्मास काल मे भी आप उनके साथ ही थे।

स० २०२६ मे आपका पालीताणा मे चातुर्मास था। आपने वहा पाया कि मुख्य टूक के मूलनायक भगवान की गरम-गरम पानी से पक्षाल करा कर किस प्रकार जीव हिंसा की जा रही थी। इसे रुकवाने हेतु आपने अथक परिश्रम किया। नवकार मन्त्र के जाप और अट्ठम आदि की तपस्या करा कर आपने इस परिपाटी को बदलवा कर जीव हिंसा बन्द करवायी।

इसी तरह से पालीताणा मे गिरिराज ऊपर लडकियों की दौड होती थी उसको भी बन्द करवाया

श्री सम्मेत शिखरजी, सिद्धाचलजी आदि तीर्थों की रक्षार्थ तो आपने अपने गुरुवर्य के साथ अनेको कार्य किए ही, श्री फलवृद्धि पार्श्वनाथ तीर्थ मेडता रोड की अभिवृद्धि मे आपका अनूठा योग-दान रहा है। प्रभु प्रतिमाजी के विलेपन का कार्य आपकी ही सद्प्रेरणा एव निश्रा मे सम्पन्न हुआ। आपकी ही प्रेरणा से मेडता मे क्रिया भवन का निर्माण कार्य सम्पन्न हुआ।

आप देव-द्रव्य के महान् रागी एव नवकार-महामन्त्र के परम आराधक है। शास्त्रों के गूढ अध्ययन के साथ साथ आप महान तपस्वी भी हैं। अपने जीवन काल मे आप ४ वर्षी तप, ५५१ बेले और २२५ अट्ठम की तपस्या पूर्ण कर चुके हैं। अभी भी अट्ठम पर अट्ठम की आराधना निरन्तर जारी है।

ऐसे महान् तपस्वी आचार्य भगवन्त की निश्रा मे (ज्ञातव्यानुसार जयपुर मे प्रथम बार इस श्रीसघ मे आचार्य भगवन्त का चातुर्मास हो रहा है) यह चातुर्मास की आराधनाए सम्पन्न कर जयपुर श्रीसघ कृत्य कृत्य हो रहा है।

—●—

"मणिभद्र" के इस २३ वें अक के बारे मे आपकी सम्मति

एव

आगामी अको मे और सुधार हेतु आपके सुझाव

सादर–आमन्त्रित हैं।

आचार्यदेव १००८ श्रीमद् विजय ह्रींकारसूरीश्वरजी म. सा.

सादर समर्पण

धर्म और अधर्म

आ० श्रीमद् विजय ह्रींकार-सूरिश्वजी म० सा०

धम्मो मुकिठ्ठं मंगलम् अहिंसा संजयो तवो।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सयोमणो ॥

दशवैकालिक सूत्र में शास्त्रकार महाराजा ने फरमाया है कि धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगलरूप है और अहिंसा, संयम तथा तप श्रेष्ठ धर्म है। देवता भी उसे नमस्कार करते हैं, जिसका मन इस श्रेष्ठ धर्म में संलग्न है। धर्म की व्याख्या विभिन्न धर्माचार्यों ने कई प्रकार से की है। किसी ने 'वत्थुसहावो धम्मो' अर्थात् वस्तु के स्वभाव को धर्म कहा है तो किसी ने जीवमात्र पर दया करने को धर्म माना है और किसी ने सच बोलने को ही धर्म कहा है। किन्तु ये सब धर्म के अंग है, पूर्ण रूपेण धर्म नहीं। धर्म मे सर्व प्रकार के सुखो की प्राप्ति यावत् मोक्ष सुख प्राप्त होता है, अतएव सब धर्माचार्यो ने व नीतिकारों ने धर्म को जीवन मे प्रमुख स्थान दिया है। धर्म में अहिंसा, संयम और तप का अनूठा स्थान है। आज सर्वत्र हिंसा का बोलवाला है। जगह-जगह कसाईखाने चल रहे है। मच्छीपालन तो आम व्यवसाय के रूप में होगया है। कुत्तो, सूअरों, चूहों आदि के विनाश के लिए युद्धस्तर पर प्रयोग किए जा रहे है। किंतु जैसा कहते है कि 'मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की" इस कथनानुसार जितने मारे जाते हैं, उनसे कहीं अधिक उत्पन्न होते रहते है। प्रकृति की लीला का कोई पार नहीं पा सकता। परमात्मा महावीर के सिद्धान्तानुसार समस्त प्राणीमात्र को जीने का अधिकार है किन्तु समय ऐसा विपरीत आया है कि अपनी स्वार्थतावश अहिंसा मनुष्यमात्र तक या यो कहे कि अपने आप तक सीमित हो गई है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं।

आज खानपान बदल गया। इसके बदलने से भावनाएं बदल गई। उनमें विकार आ गया। आर्तध्यान और रौद्रध्यान जो दुर्गति के कारणभूत है अधिक बढ गए, कषाय वृद्धि अधिक हो गई। जिसका परिणाम अपने सामने ही हम प्रतिदिन देख रहे है। हजारो की सख्या मे प्रतिदिन मौते, एक्सीडेन्ट, दैविक प्रकोप आदि हो रहे है। ये संकेत दे रहे है कि 'प्राणी समझ' सोच, विचार। अपने एक लघु और अल्प जीवन के लिए दूसरों की जिन्दगी से तू क्यो खेल रहा है? और तो और जीवन प्रदायिनी दवाइयों में भी मिलावट। कौन सी वस्तु इस मिलावट के रोग से अछूती रही है। ये सब आर्तध्यान और रौद्रध्यान की पोषक है। ऐसा करने का विचार ही तब आता है जबकि इन दोनों ध्यानो का हृदय में समावेश होता है। अरे! जैन दर्शन तो कहता है कि किसी भी प्राणी

के प्राणो को किसी भी प्रकार अर्थात् मन वचन एव काया से दुखाना भी हिंसा है। कितना सूक्ष्म विवेचन। ऐसे कितने हैं जो इस हिंसा से बच सके हैं। आज जो भी अनर्थ हैं वे इस हिंसा के ही परिणाम हैं। हिंसा अर्थात् अधर्म और अहिंसा यानि उत्कृष्ट धर्म। अरिहत परमात्माओ की सर्वोपरिसत्ता इस अहिंसा मे ही समाविष्ट है। 'सवि जीव करू शासन रसी' ऐसी भाव दया मन उल्लसी। यह अरिहंत परमात्मा की सर्वोपरि सत्ता का मूल बीज है। केवलज्ञान होते ही प्राणीमात्र के प्रति दया भाव एव करुणाभाव का समुद्र उन परमात्माओ के हृदय मे उमड पडता है। परिणामत वाचा स्फुरित हो उठती है और वे उपदेष्टा होकर प्राणी मात्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हैं। किंतु अफसोस, आज हमने इस सर्वोपरि सत्ता के महत्व को घटा दिया। जिस परमात्मा का अनन्त उपकार है उसके महत्व को कम करने के प्रयास हो रहे हैं। सिद्धान्त मे प्रथम देव फिर गुरु और तदन्तर धर्म का स्थान है। ऐसा क्रम है। किन्तु आज इसके विपरीत आचरण हो रहा है। इसलिए यदि हमे पुन ससार मे जाहोजलाली लानी है तो सर्वोपरि सत्ता के महत्व को समझकर, इसके महत्व को बढाना होगा तभी हमारा कल्याण होगा अन्यथा नाव मझधार में झूमती रहेगी। किनारा पा सकना कठिन होगा।

तात्पर्य यह है कि देव, गुरु एव धर्म इनके हम सही उपासक बनें। हिंसा के मार्ग को त्यागें। आर्तध्यान रौद्रध्यान छोड़ें और अहिंसा के सच्चे अनुयायी बनें। सयम का आचरण करें और तप को जीवन मे उचित स्थान दें तभी हमारा कल्याण होगा अन्यथा नहीं।

इससे हममें मैत्री भावना, करुणाभावना, मध्यस्थ भावना आदि का प्रादुर्भाव होगा जिनसे प्राणी मात्र का उद्धार होगा और हमारा भी मगल होगा। अरिहत परमात्मा की भक्ति मे कितनी शक्ति है, वह आचार्य भगवत मानतुगाचार्य के इस श्लोक से भली भांति जानी जा सकती है—

त्वत्सस्तवेन भवसतति सन्निबद्ध,
पापम क्षणात क्षयमुपैतिशरीरभाजाम्।
आक्रान्तलोक मालिनीलमशेषमाशु,
सूर्या शुभिन्नमिव शावरमन्धकारम ॥

अर्थात् अरिहत परमात्मा की स्तुति करने से प्राणियों का अनेकानेक जन्मो का सचितपाप एक क्षणमात्र मे दूर होजाता है। जिस प्रकार सूर्योदय से कमलिनियो पर पडी ओस की बूदे और धुध एक क्षणमात्र मे दूर हो जाती है। कितना अदभुत अतिशय है परमात्मा अरिहत देवकी स्तवना और भक्ति का।

अत कल्याणार्थियो को इनकी उपासना मे लीन हो जाना चाहिये, जिससे शाश्वत सुख की प्राप्ति हो। शुभमस्तु।

●

कर्मशीलता, कर्त्तव्यपालन, त्यागवृत्ति और कभी-कभी आने वाली खुशी की घडियो का नाम ही जीवन है।

पर्युषण पर्व की प्राणवत् "क्षमापना" की समीक्षा

शास्त्र विशारद पू० आचार्य श्री विजय दक्षसूरीश्वरजी म० सा०

खंती सुहाण मूले, धम्मस्स उत्तमा खंती।
महाविज्जा इव खंती, दुरिआइ सव्वाइं॥

"क्षमा" बाह्य और अभ्यन्तर सुख का मूल कारण है क्योंकि यह धर्म की उत्तम जननी है। सर्वदुखों को दूर कर शास्वत सुखों का सृजन करने में क्षमा जननी का कार्य करती है।

"दाणं दरिद्दस्स पहुस्स खंती,
इच्छानिरोहो मण-इंदिअस्स।
पढमे वये इंदियनिग्गहो अ,
चत्तारि एआणि सुदुद्धराणि॥

दरिद्र अवस्था में दान देना, सशक्त अवस्था, प्रभुता और सम्पन्नता में क्षमा धारण करना, इच्छाओं को रोकना, मन का दमन करना, यौवनावस्था में इन्द्रियों का निग्रह करना, ये चार वस्तुएं अत्यन्त दुर्लभ एवं मुश्किल है।

"मन्निन्दया यदि जनः परितोषमेति,
नन्वप्रयासजनिता यमनुग्रहो मे।
श्रेयो र्थिनो हि पुरुषाः परितोषहेतो-
र्दुःखार्जितान्यपि धनानि परित्यजन्ति।

कोई आपकी निन्दा करे तो यह समझना चाहिए कि यह मेरा बहुत बड़ा उपकार कर रहा है। यह मानना चाहिए कि मेरा कुछ आता जाता नही है, मेरा कोई नुकसान नहीं है बल्कि मेरी आत्मा को लाभ ही है।

निन्दा करने वाला व्यक्ति बिना खर्चे के मेरा मैल धो रहा है, मेरी आत्मा को शुद्ध करने का कार्य कर रहा है और कर्म मल से अशुद्ध बनी आत्मा पर से मैल धोने का उपकार कर रहा है।

"भूल करना मानव स्वभाव है" भूल को भूल तरीके से स्वीकार करने से आत्मा शुद्ध और पवित्र बनती है और सुधार का अवसर है। जो भूल को भूल स्वीकार करते हैं उनके सुधार का अवसर है लेकिन जो भूल को छुपाते है और एक भूल को छिपाने के लिए बार-बार भूलें करते है, छल प्रपंच करते है उन्हें तो चौरासी के चक्कर मे भ्रमण करना ही है।

"कम खाना, गम खाना और नम जाना" के सिद्धान्त को जीवन में अपनाने से ही मुक्ति पथ के राही बन सकते हैं। भूख से तनिक कम खाने से तन्दुरुस्ती ठीक रहती है, गम खाने से सामने वाले का क्रोध शांत होता है और नम जाने से समस्त प्रकार की शत्रुता, वैर विरोध का नाश हो जाता है।

क्षमा–क्रोध, आवेश और गुस्से का प्रतिपक्षी है। क्रोध भमकती हुई भयकर अग्नि है और जब यह प्रकट होती है तो प्रथम तो जिसमे यह क्रोध रूपी अग्नि प्रज्वलित होती हैं उसी को भस्मीभूत कर देती है और यदि समय पर क्षमा रूपी अग्नि-शमक नही आवे तो अपने आसपास वालो को भी जलाकर राख कर देता है। क्रोध बुद्धि के विकास को अवरुद्ध कर देता है। क्रोध वर्षों की त्याग, तपस्या, जप, तप और सयम का नाश कर दता है। क्रोध अनर्थों का मूल है, जीवन का शूल है सवभक्षी महाराक्षस है परस्पर की प्रीति का नाश करने वाला है और मु ह से ऐसे ऐसे शब्द निकलवा देता ह जिसके लिए स्वय को ही पश्चाताप करना पडता है। क्रोध मे मनुष्य ऐसे-ऐसे कुकृत्य कर जाता है कि जिसके लिए बार-बार पश्चाताप करने पर भी उनको सुधारा नहीं जा सकता। क्रोधी के जीवन मे रोग बढते हैं, विकृति, पापवृत्ति, अशाति बढती है और पुण्य प्रवृत्ति, सस्कृति और शाति का ह्रास हो जाता है।

क्षमावत आत्मा निरोगी रहती है और स्वास्थ्य-से समृद्ध बनती है। पुण्य प्रकृति में वृद्धि होती है। सच्ची शाति का अनुभव होता है और सुखी जीवन को निश्चिततापूर्वक जी सकता है।

क्रोध नए-नए शत्रुओ को पैदा करता है वहा क्षमा सामने खडे हुए शत्रु को भी मित्र बना देता है। क्रोध लौकिक और लोकोत्तर शक्तियो का नाश करता है वहा क्षमा लौकिक-लोकोत्तार शक्तियो का सृजन करता है। जहा क्रोध है वहा अशाति ह लेकिन जहा क्षमा है वहा शाति का साम्राज्य है। सामने वाला भले ही क्षमा नही करे लेकिन क्षमा मागने वाले के हृदय मे आत्म सतोष एव शाति का अनुभव होता है। क्षमा मागना और क्षमा करना यही जैन शासन और धर्म का सार ह।

क्षमा के विषय मे विदेशी विद्वानो के उदगार

बिशप हार्न्स नामक अ ग्रेज विद्वान का कथन है —

Patience is the guardian of faith, the preserver of peace, the cherihser of love, the teacher of humility

क्षमा का गुण आस्था और श्रद्धा का पोषण करता है। सलाह और शाति बनाए रखता है। प्रेम और नम्रता सिखाता है।

Forgiveness governs the flesh, strengthens the spirit, sweetens the temper stifles anger, extinguishes envy, subdues pride

क्षमा—जिव्हा पर अकुश रखता है–अर्थात् क्रोध के आवेश मे अनर्थ का सृजन करन वाली वाणी पर अकुश रखता है। मनोविकारो पर काबू करता है।

Patience produces unity in the church, loyalty in the state, harmony in families and societies

क्षमा का गुण धार्मिक सस्थाओ मे सगठन और एकता की भावना उत्पन्न करता है। क्षमा देवगुरु धर्म के प्रति श्रद्धा बढाता है राज्य के प्रति भक्ति और वफादारी पैदा करता है तथा कुटुम्ब और परिवार मे एकता और शाति का साम्राज्य स्थापित करता है।

Forgiveness comforts the poor and decrement the rich

क्षमा रूपी गुण निधनो मे दिलासा और धन-वानो मे मध्यम प्रकृति की भावना उत्पन्न करता है।

क्रोध का भावी परिणाम

One angry moment often does what we repent for years, it works the wrong we never make right by sorrow or tears.

क्रोध का एक क्षण कई बार ऐसा कार्य करवा देता है जिसके लिए वर्षो तक पश्चाताप करना पड़ता है और जिन्दगी भर आंसू बहाने पर भी उसमें सुधार नही हो सकता। क्रोधी मनुष्य का अपने आप पर भी काबू नही रहता। यदि उसके हित की बात भी बतायी जावे तो उसका उल्टा अर्थ ही लेगा और जीवन में कठिन से कठिनतर परिस्थितियां पैदा करता रहेगा। उसका सारा पुरुषार्थ निष्फल जाता है।

जिस व्यक्ति की जीभ पर काबू है, अपने पर संयम है और व्यवहार में शालीनता और शिष्टता है वह व्यक्ति जहां भी जाता है सम्मान और आदर प्राप्त करता है।

पर्यूषण महापर्व की आराधना का अभिन्न अंग–क्षमा

पर्यूषण महापर्व की आराधना करते हुए अपने कार्यकलापो, विचारों और मान्यताओंका अवलोकन और सिंहावलोकन करें और क्रोध रूपी कचरे को निकाल कर और शांति के साम्राज्य की स्थापना करें। अपने हृदय को प्रेम और सौहार्द से परिपूर्ण करें जहां से शांति और आनन्द का झरना बहता रहे।

Clean your heart with fogiveness and adornour soul with love.

अपने आप पर कठोर परन्तु साथ वालों के प्रति कोमल बने। समस्त भव प्राणियों को क्षमा प्रदान करें लेकिन अपनी आत्मा पर छाए हुए कषायो और दुर्गुणों को कभी क्षमा नही करें अर्थात् अपनी भूलों को भुलाए नही अपितु उनका स्मरण कर अपने आप मे निरतर सुधार करते हुए अपनी आत्मा को निर्मल और शीतल बनाने का निरंतर प्रयास करते रहे। आत्म शांति प्राप्त कर लेना समस्त संसार को जीत लेनें के समान है। इस पर्यूषण पर्व के अवसर पर यदि जीवन में क्षमा भावना का तनिक अंश भी अंकुरित कर सकें, क्रोध पर विजय प्राप्त कर सकें और किसी आत्मा को अपने कारण दुख और संताप नही पहुंचे ऐसी भावना सुदृढ़ कर सकें तो ही सच्चे रूप में पर्यूषण पर्व की आराधना सम्पन्न कर सकेंगे।

ओम् शांति शांति शांति।

> अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
> उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥
>
> यह अपना है, यह पराया है ऐसी मान्यता छोटे दिल वालो की होती है। विशाल हृदय लोगों के लिए तो सारा संसार ही उनका परिवार होता है।

एकविचार

समाज अशांत क्यो ?

● श्री विजय भद्र

आषाढी बादल गगन मे घूम रहे थे, चारो ओर सूर्य का प्रकाश नही सा हो गया था, पानी अब गिरे अब गिरे ऐसा देखने वालो को महसूस हो रहा था। बच्चे नाचने कूदने को लालायित हो रहे थे। मोर अपनी पाखें फैलाकर नृत्य करने की इच्छा व्यक्त कर रहे थे।

किन्तु—एक आधी आई बादल बिखर गए, बारिश तो न आई तो न आई।

जैन समाज जो कि एक सर्वोत्तम धर्म का अनुयायी है, जिस धर्म के विचार मानव मात्र को सुख शाति और आनन्द देता है वह समाज आज चारो ओर अशात क्यो ?

चरम तीर्थपति श्रमण भ० श्री महावीर स्वामी ने जिस दिन श्री सघ की स्थापना पापापुरी मे की थी उस वक्त जैसी परिस्थिति थी क्या उससे आज दयाजनक चिंतनीय स्थिति नही है ?

भ० महावीर ने अपने सम्पूर्ण ज्ञान से इन्द्रभूति आदि ग्यारह महापण्डितो को शुद्ध ज्ञान दिया, शुद्ध विचार से वे भ० महावीर के शिष्य बनकर अपनी आत्मा का कल्याण कर चुके, क्या वह सम्पूर्ण ज्ञान हमारी कालिमा दूर करने मे शक्ति सम्पन्न नहीं ?

प्रज्ञाचक्षु शहर की गली-गली में घर घर मे घूमता है क्या उसके पास देखने की शक्ति है ? हा, सिर्फ 3/3॥ फुट लम्बी एक लकडी रहती है, उसके सहारे वह अपनी मंजिल काटता है क्या उस लकडी मे चैतन्यता है ? देखने की शक्ति है ? प्रज्ञाचक्षु को दिखाने की ताकत है ? नहीं, फिर भी वह हर समय लकडी के सहारे ही अपना प्रवास जारी रखता है सुरक्षित स्थान गमनागमन करता है क्षेत्र कुशलता से खड्डे मे पडे बिना, कहीं टकराये बिना निर्विघ्नता से अपने ध्येय को पा लेता है।

इसके पीछे प्रज्ञाचक्षु की श्रद्धा, धैर्यता, जाग्रति कितनी काम करती है इसका हमने कभी विचार किया है ? सिर्फ वह जाता है उतना ही विचार हमारे आज के जीवन मे बस नहीं हो जाता।

जैसे सडक पर एक्सीडेन्ट जो भी लोग कर बैठते हैं, उन सब को क्या हम प्रज्ञाचक्षु कहेंगे ? क्या वे आखों से देख नही सकते ? सत्य तो वह है कि भागदौड के जीवन मे वे अपनी अकल और आखें गिरवी रख घूमते हैं ध्येय विहीन जीवन जीने की कोशिश करते हैं। जीवन किसे कहना—वह वे न जानते हैं न समझने का ही प्रयत्न ही करते हैं।

ठीक, आज जैन समाज की, सघ की, व्यक्ति की ऐसी ही बहुत नाजुक सी परिस्थिति देखने को मिल रही है प्राचीन काल मे जिस समाज के मुख पर लालिमा थी, गर्व था, प्रसन्नता थी, जीवन

जीने के शुभ विचार थे, आज सारी की सारी बातें लुप्त सी हो गई।

इसमें दोषी किसे कहना ?

वर्तमान काल में बहुत पूजा-पाठ हो रहे है व्रत-तप-जप अधिकाधिक बढ़ रहे है दान धर्म का पालन अधिक मात्रा में समाज के श्रद्धालुगण कर रहे हैं तो फिर इस धर्मकरणी का फल क्या अशांति हैं ?

नहीं, ऐसा कभी भी नही हो सकता। धर्म-हिंसा से मुक्ति दिलाता है। असंयम स्वच्छन्दी पणे से हमें उबारता है। दिन रात विवेक विहीन खाने-पीने से रोकता है। अर्थात् अहिंसा के पालन द्वारा वह हमारी दयामय भावना को बढ़ाता है। संयम के विचार द्वारा हमारे हर कार्य पर निगरानी रखता है। हमे गौरवपूर्ण जीवन जीने का अवसर देता है और तप द्वारा आत्मशुद्धि शरीर शुद्धि मनशुद्धि कराकर अप्रमत्त बनाता है।

किन्तु—

जमाने की आंधी ने हमारी श्रद्धा को जड़मूल से उखाड़ फेंका है, आधुनिक शिक्षा पद्धति ने गुरु और धर्म के पूज्य भाव को डगमगा दिये है। वेश-भूषा ने हम कौन हैं यह भूल जाने का नया मोड़ दिया है। टी० वी० और अभक्ष आहार हमारे विचार-आचार व व्यवहार में काफी परिवर्तन लाये है फलस्वरूप हम असली राह भूले पथिक हो चुके हैं।

यदि इस रास्ते से लौटना हो, समाज को चिंता से मुक्त करना हो तो—

धर्म की क्रियायें भावात्मक दिलचस्पी से करनी पड़ेगी।

आवश्यक क्रिया के सूत्रों को यथा अर्थ विवेचन से सीखने समझने पड़ेगे।

ज्ञान पुष्टक ग्रन्थो के ऊपर गहरे विचार करके श्रद्धा को विकसित—स्थिर करनी होगी।

तो ही हम हमारी खोई हुई पूंजी प्राप्त कर सकेंगे।

—●—

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न याता वयमेव याताः तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥

भोग क्षीण नही होते हम भोगने वाले ही क्षीण हो जाते हैं। तप, साधना आदि मे तप कर हम निर्मल हुए नहीं, बल्कि विषय वासनाओं की ज्वालाओं में फंसकर दग्ध हो गए। समय चक्र कभी घूमना बन्द नही होता, हम इस चक्र में चढे प्राणी समाप्त हो जाते है। विषयोपभोग की लालसा कभी कमजोर नहीं पड़ती, हम ही क्षीणकाय हो जाते हैं।

विषमकाले जिनबिंब जिनागम भविष्य कुं आधारा

मुनि श्री जयरत्न विजय जी महाराज

इस विषम समय मे तीर्थंकर परमात्मा के, केवली भगवतो के, श्रुतधरो के अभाव मे भव्य जीवो के कल्याण रूप जिनबिंब एव जिनागम ही आधार हैं। इसीलिए परम उपकारी १४४४ ग्रन्थो आ० के प्रणेता हरिभद्र सूरि म० ने योगदृष्टि समुच्चय मे शास्त्र श्रवण एव शास्त्र सग्रह को लिखा है। जो योग के बीज है। सर्वज्ञ प्रणित शास्त्रो के सिद्धातो का प्रचार एव प्रसार करने का है। कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र सूरि महाराज के पास परमार्हत राजा कुमारपाल ने ७०० लहियों को बिठाकर शास्त्र लिखवाये।

एक समय ताडपत्र के अभाव मे लहियें हाथ पर हाथ लगाये बैठे थे, आचार्य श्री भी चिंतित थे। कुमारपाल से रहा नही गया। आचार्य श्री को वदन करने के पश्चात पूछता है कि हे प्रभु ! आज यह सब ऐसे ही क्यो बैठे है। इसका क्या कारण है ? आचार्य श्री ने कहा कि हे राजन ! सर्व स्थानो पर ताडपत्र की खोज की परतु इस समय कहीं भी उपलब्ध न होने से इसके अभाव मे कुछ भी कार्य नही हो सकता। यह सुनते ही गुरु भक्त कुमारपाल विचार करता है कि मैं अठार देश का मालिक, ऐसे परमोपकारी गुरु मुझे प्राप्त होने पर उनको सहयोग नहीं कर सकता तो यह लक्ष्मी, ऐश्वर्य किस काम का। यह तो मेरे कलक समान है। लोग कहेंगे कि सामग्री होते हुए भी राजा कुछ नहीं कर सकता। आज इस पर बहुत ही चिंतन करे जैसा है। गुरु के प्रति कितना अहोभाव, शासन के प्रति कितना आत्म समर्पण ! दृढ़ अभिग्रह कर लेता है कि जब तक ताडपत्र उपलब्ध नही होंगे वहा तक अनजल का त्याग। इस प्रकार की राजा की प्रतिज्ञा सुनकर सब अवाक् बन गये। राजा अपने महलो मे आता है। कसौटी तो सुवर्ण की ही होती है, कथीर की नहीं। इनके सत्व के प्रभाव से उद्यान मे रहे हुए जितने अशोक वृक्ष थे वह सब ताडपत्र के बन गए। माली आकर राजा को सूचना करता है। वहाँ पहुँच कर तो आश्चर्य चकित बन जाता है। **"धर्मो रक्षति रक्षित"** धर्म की रक्षा करने वाले का रक्षण स्वय ही हो जाता है। इस प्रकार राजा कुमारपाल ने सर्वज्ञ प्रणित शास्त्रो के सिद्धान्तो को ताडपत्र पर लिखवाया। इसीलिए तो आचार्य हेमचन्द्र सूरि महाराज ने सिद्धराज व कुमारपाल को अलग-अलग सलाह दी।

हे सिद्धराज ! तू स्वयं को चाहे जितना महान समझता हो परंतु हमारे लिए तो महाकंजूस है। सिद्धराज ने कहा कि प्रभु,मुझे क्या करना चाहिये ? इसके समाधान हेतु कहा कि तुझे सर्वदेवों को, समस्त गुरूओंको , सर्वधर्मो को मानना, सन्मान करना चाहिए जब कि कुमारपाल से कहा कि हे राजन् ! तुम अरिहंत को ही भजना, सद्गुरुओं की सेवा करना, सद्धर्म का पालन कर आचरण करना ! सिद्धराज को अलग सलाह देने का मुख्य कारण यह था कि वह अत्यंत ही विषयाभिलाषी, परिग्रहपर मुर्च्छा वाला था इससे ऐसा कहा हूँ। शास्त्र अधकार का नाश कर आत्मा में प्रकाश लाने में सामर्थ्य वाला होता है। वस्तुपाल-तेजपाल ने ७॥ करोड द्रव्य खर्च करके सर्वज्ञ प्रणित शास्त्र, सिद्धांत लिखवाए तथा अनेक स्थानों पर ज्ञान भंडार स्थापित किये ! वर्तमान में शास्त्र एवं शास्त्र पढ़ाने का वहुत ही अभाव प्रायः देखनेको मिलता है। जब तक तत्व पर रुचि, देवगुरु के प्रति श्रद्धा समर्पण भाव उदय में नहीं आएगा वहाँ तक कभी भी आत्म कल्याण की ओर अग्रसर नहीं होंगे। इसके लिए ही ज्ञानी भगवंतों के अभाव में जिनबिंब एवं जिनागम ही उत्तम साधन है ! आचार्य हरिभद्र सूरी म० अपने स्वयं के जीवन का अवलोकन करते हुए कह रहे है कि जो आगम रूपी सूर्य मुझे प्राप्त नहीं होता तो मेरी आत्मा के अन्धकार का नाश कैसे होता। ऐसी भावना समर्पण की थी। उनके पूर्वावस्था का अवलोकन करने पर महसूस हुए विना नहीं रहेगा कि एक पुरोहित होते हुए तीर्थंकर देव की प्रतिमा की किस प्रकार मजाक की थी और दीक्षा पश्चात् शास्त्रों के गहन अभ्यास से एक दम जीवन पलट दिया। शासन का प्रेम कितना हृदय में बस गया होगा। जो मजाक की थी उसकी परिभाषा ही बदल गई। तब ही तो कहा गया है कि जीवन मे ज्ञान विना मानव पशु के समान है। सम्यक् ज्ञान प्राप्त होने पर जीवन ही पलट देता है।

सम्राट अशोक, सम्प्रतिराजा ने अपने जीवन काल में अनेक मन्दिरों का जिर्णोद्वार करवाया, अनेक जिनबिंब भरवायें, कई नवीन जिनालयों का निर्माण करवाया। शास्त्र सिद्धान्तों को पुस्तकारूढ़ कराया। कावी में सासु-वहु का मन्दिर, आवु में देराणि-जेठानी का मन्दिर, जैसलमेर का अद्भुत अपूर्व ज्ञान भण्डार, चित्तौड़गढ़ के किले के स्थम्भ में अलभ्य शास्त्रों का भण्डार है ऐसी किवंदंतिया है। इसी प्रकार से यह जिनबिंब एवं जिनागम हमारे आत्म कल्याणार्थ अपूर्व साधन है ! इसको समझना, श्रद्धा करना एवं आचरण करना ही हमारा परम कर्त्तव्य है !

सात क्षेत्र की आवश्यकताः—सात क्षेत्र में जिनबिंब एवं जिनागम आ ही जाता है। चतुर्विधसंघ साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका एवं जिन मंदिर ! इन क्षेत्रों में जो क्षेत्र अत्यन्त दयनीय स्थिति में हो उसे ऊपर उठाना अत्यन्त आवश्यक है। जो धर्म करते है उसका पालन, आचरण करते है अगर उनके पास साधन-सामग्री का अभाव होगा तो वह शनैः शनैः उससे विमुख होता जावेगा । जरूरत इस वात की है कि साधर्मिकों का उद्धार होवे ! जिनकी स्थिति वास्तव में खराब हो उसे मदद की जाय ! विद्यार्थियों को विद्या से विमुख होना पड़ता है। होनहार होते हैं वह आगे नहीं बढ़ सकते ! हमारे समाज में वरकाणा एवं ओसीयां दो ही ऐसे स्थान है जहाँ पर धार्मिक एवं सांसारिक शिक्षण दिया जाता है। यह समझने का, विचार करने का अव समय आ गया है कि भावी पीढ़ी धर्म से विमुख होगी तो आगे शासन का क्या होगा ? समाज जानता है। सबकी शिकायत भी यही है। परन्तु एक मंच पर बैठकर विचार करने के लिए तैयारी नही है ! ऐसा क्यों हो रहा है। इसमें क्या त्रुटियाँ है। क्या हमारे पास इसके साधन नही है अथवा समय नही है। सेठ जगडूशाह ने दुष्काल के समय हजारों लाखों लोगों के जीवन को बचाया। संकट के समय सहयोग देदे वही सच्चे

मिन हैं ! क्या हम इन महापुरुषों को भूल गये हैं या हमारे जीवन की प्रवृत्ति ने उनको भुला दिया है !

वस्तुपाल-तेजपाल को देवी ने कहा कि तुम्हारे भाग्य मे केवल एक ही वस्तु है। उसी का वरदान दे सकती हू ! जिन मन्दिर का निर्माण या सन्तान ! तब तत्वरसिक सुश्राविका अनुपमा देवी कहती है कि सन्तान तो एक भव की ही होगी। जबकि जिन मन्दिर तो भव्य आत्माओ के मार्ग दर्शन रूप होगा। सम्यगदर्शन की शुद्धि मे सहायभूत बनेगा। देवी को कह देते हैं कि हमे पुत्र की नही परन्तु जिन मन्दिर निर्माण करने का वरदान दो ! वस्तुपाल-तेजपाल इतन पुण्यशाली कि जहा पर धन बाटना चाहते वही से उनको धन की प्राप्ति होती। आबू का मन्दिर, उनकी कला हमारे लिए आत्म कल्याण का अपूर्व साधन हैं। जब तक हमारे हृदय में रही हुई सकुचित वृत्ति, स्वार्थ वृत्ति रहेगी, परोपकार की भावना नही आयेगी वहाँ तक हमारा उद्धार शकास्पद है। साधर्मिक का उद्धार करना अत्यन्त आवश्यक हैं। हमारे लिए यह गौरव है कि महावीर प्रभु का शासन अखिण्ड रूप मे हमारे तक पहुँचा है। अब इसकी उपेक्षा करेंगे तो भावी पीढी का क्या होगा ? इन सात क्षेत्रो का चितन, मनन किया जाय, आचरण किया जाय तो निश्चित रूप मे यह कलिकाल भी हमारे लिए सतकाल बन जावेगा। अन्यथा इसी प्रकार राग द्वेष की ग्रथी मे उलझे रहे तो हमारा क्या होगा ? भविष्य अन्धकार मे है। अधकार से प्रकाश की ओर प्रस्थान करने का है। शासन का कभी भी अहित होने वाला नहीं। यह साडे अठारह हजार वष तक चलेगा। अत समय मे भी चतुर्विध सघ रहेगा। शासन को हमारे निमित्त से किसी प्रकार का नुक्सान न पहुँचे यह ध्यान मे देने योग्य है। सर्व जीवो के प्रति मैत्री भाव, सात क्षेत्रों के उत्कर्ष की भावना, "सवी जीव करू शासन रसी" ऐसी शुभ भावनाओ को हृदयस्थ किया जायेगा तो शासन के उत्कर्ष में हमारा उत्कर्ष निश्चित है। इसी प्रकार की भावना रहेगी तो अवश्य रूप से परमपद के समीप पहुँचने का प्रयास सफल बनेगा।

●

सम्यक्त्व की घोषणा—

अरिहतो मह देवो, जावज्जीव सुसाहुणो गुरुणो।
जिण पन्नत्त तत्त, इअ सम्मत्त मह गहिअ ॥

मैं जीऊँ वहाँ तक अरिहत मेरे देव हैं, सुसाधु मेरे गुरु हैं और जिनेश्वर प्ररूपित तत्त्व मेरा धर्म है, ऐसा सम्यक्त्व मैंने ग्रहण किया है।

अब तो जागो

● साध्वी श्री प्रियदर्शना श्रीजी म०
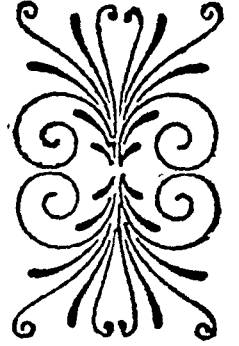
अनादि काल से यह जीवात्मा मोह, प्रमाद एवं आलस्य की निद्रा में सो रही है। इसे जगाने हेतु आगम शास्त्र पुराण एवं कुरान आदि बारम्बार प्रेरणा दे रहे हैं। भ० महावीर स्वामी जी ने तो अपनी अन्तिम देशना उत्तराध्ययन सूत्र में गौतम को सम्बोधन करते हुए एक वार नहीं, दो वार नहीं किंतु उन्नत्तीस वार कहा है "समय गोयम मा पमायए।" हे गौतम ! क्षण का प्रमाद मत कर। Awake arise, awake arise बारम्बार चुनौती दे रहा है कि हे मानव जरा विचार कर कि तू क्या कर रहा है, तू कहां से आया है, तुझे कहां जाना है। इन सबके लिए जाग उठ, जाग उठ। बाहर की निद्रा में भी व्यक्ति कई वार धोखा खा जाता है हानि कर लेता है कर्तव्य से चूक जाता है। व्यक्ति यात्रा में जा रहा हो, मुसाफिरी कर रहा हो तो उसे कितना जाग्रत रहना पड़ता है। हम देखते भी हैं कि साधारण यात्रा में यात्री कितने सजग रहते हैं गन्तव्य स्थान आने से पूर्व ही उतरने के लिए अपना सामान भी तैयार कर लेते हैं पर जीवन की महान् यात्रा में हमारी सजगता जरा सी भी नही होती। न गन्तव्य स्थान का बोध ही होता है, न पूर्व की तैयारी। मृत्यु जब हमें जीवन से अलग कर देती है तो हम अवाक् रह जाते हैं, तब भान होता है कि मृत्यु भी कुछ है इसके लिए हमें तैयारी भी करनी थी। अतः यात्रा की तैयारी, गन्तव्य का ज्ञान, साधना का ज्ञान तभी हो सकता है जब हम जागृत हों। बाह्य अथवा अभ्यन्तर दोनों प्रकार की निद्रा हानिप्रद है। बाहर की नींद के पश्चात् तो मानव फिर भी थकावट दूर कर लेता है ताजापन अनुभव करता है पर भीतर की मोह प्रमाद रूपी निद्रा तो जीवात्मा को भव भ्रमण में डालने वाली जीवन यात्रा को बढाने वाली है। ऐसी निद्रा को दृष्टि में रखते हुए व्यक्ति पांच प्रकार के होते हैः—

१ प्रसुप्तात्मा २. सुप्तात्मा ३. जागृतात्मा ४. उत्थितात्मा ५. समुत्थितात्मा। प्रथम प्रकार की नींद वाले व्यक्ति उग्र मोहनीय कर्म के उदय से कर्म बन्धन का विचार नहीं कर पाते। यथा कई वार गहरी निद्रा में सोया हुआ व्यक्ति बारम्बार उठाने पर भी आवाज लगाने पर भी नहीं सुनता। जिसे हम कुम्भकरण की निद्रा कहते हैं। उठाने वाला तंग आजाएगा पर सोने वाला व्यक्ति उठ नही पाता। इसी प्रकार प्रसुप्तात्मा त्यागी मुनिजनों की बारम्बार वाणी सुनना तो कहा, कर्म बन्धन क्या, कर्म क्षय क्या इनसे अनभिज्ञ रहता है। इसका विचार तक उसे नहीं आ पाता है। स्वजीवन का मूल्य भी नही समझ सकता। उसे तो केवल शरीर सम्बन्धी ही विचार आता है। ऐसी आत्माओं को जगाने हेतु घोर निद्राधीन व्यक्ति की भांति बारम्बार उठाने की, हिलाने की, ज्ञानरूपी जल

छाटने की आवश्यकता रहती है। थोडी तन्द्रा छूटी पुन निद्रा आ घेरती ह अत कितना प्रयत्न करना पडता है। इसी प्रकार स्वय का बोध कराने मे पूर्व जगाना अति कठिन है उसमे भी प्रयत्न प्रयास का होना अनिवाय है। सोए हुए का भाग्य भी सोया रहता है। और जागने वाले का भाग्य भी जागता रहता है। सोया हुआ कलयुग के समान हैं। तभी तो कहा है —

> उठ जाग मुसाफिर भोर भई
> अब रैन कहा जो तू सोवत ह
> जो सोवत है सो खोवत है,
> जो जागत ह सो पावत है।

"सोवे सो खोवे, जागे सो पावे, प्रसुप्तात्मा की मोह निद्रा टूटती नही है। इसी मोह निद्रा मे ससार मे परिभ्रमण करता रहता है। उसके कर्मो का उपशय क्षयोपशय हो जाता है पर क्षय नहीं। कम क्षय विना वधन मुक्ति नही, वधन मुक्ति विना निवाण नहीं। आत्मायें निवाण की योग्यता होने पर भी इस श्रेणी की आत्मा मोह निद्रा मे ही लीन रहती है।

२ सुप्तात्मा —यह दूसरे प्रकार की सोई हुई आत्मा ह। मोह निद्रा का गाढा आवरण तो इस पर नही रहता फिर भी इसकी तन्द्रा सुषुप्ति जैसी ही होती है। ज्ञानचक्षु खुलते नहीं ह। इस प्रकार की आत्मा को उठाने क लिए अति प्रयास तो नही करना पडता, हिलाने की आवश्यकता नही पडती, केवल क्षमण वग के उपदेश रूपी आवाज को सुन-सुन कर नींद त्याग कर सकता ह। सत्य का सूय उदय होने पर भी नीद मे देख नही पाता सम्यक बोध इससे दूर रहता है। ऐसी आत्माओ की ससार मे कमी नही पर ये स्वय निद्रा त्याग नही कर सकती। इनके कान के पास जा इनके नामोच्चारण से आवाज लगाये तभी जाग्रति सभव है।

जागृतात्मा — यह तीसरी श्रेणी की आत्मा है? सत्य का प्रात कालीन सूर्य तो निकल आया, ज्ञान रूपी प्रकाश भी चारो ओर प्रसारित होने लगता ह पर इस श्रेणी की आत्मा मौन मौन केवल प्रकाश को देखना है पर दिन निकल आया मुझे कुछ काय करना है बिस्तर छोडना है ऐसा विचार नही कर पाता। आत्मस्वरूप को पहचानने तो लगा पर बिना श्रम साधना के अनादिकालीन कर्मावरण के परतें कैसे छिन्न भिन्न हो पाएगी? किसी वस्तु को देखने मात्र से उसकी प्राप्ति नही हो जाती। क्षुधा पीडित व्यक्ति सारा दिन हलवाई की दुकान के सामने बैठ भिन्न भिन्न प्रकार की मिठाइया देखता रहे पर पेट पूर्ति तो खरीद कर खाने से होगी न कि देखने मात्र से। अनन्तकाल का मिथ्यात्व का आवरण तो जाता रहा। ज्ञान की ग्रन्थिया खुल गई एव अभूतपूर्व प्रकाश भी जगमगा रहा है पर उस प्रकाश का लाभ तो स्वय को उठाना पडेगा। उसे आगे बढाना होगा। इस श्रेणी की आत्मा प्रथम दो प्रकार की आत्माओं मे श्रेष्ठ ह। विकासपथ पर खडी है चलना शेष है।

४ उत्थितात्मा—जगने के पश्चात चलना आवश्यक है उठने का विचार भी आगया। चलना है काय करना है इतने समझने पर बिस्तर का त्याग भी कर देता है क्योंकि शास्त्रो मे जगाने हेतु बारम्बार कहा है उठो आलस्य छोडो, प्रमाद त्यागो। 'उट्ठिए नो पमायए' (आचाराग १/५/१) यदि तीसरी श्रेणी की आत्मा जाग कर जम्हाई ले बैठा है तो चौथे प्रकार की आत्मा खडी हो जाती है। चलने की तैयारी हतु कमर कस लेता है उसका भाग्य भी खडा हो जाता है। जागृतात्मा प्रगति के प्रथम सोपान पर ह तो उत्थितात्मा उससे दो कदम और आगे बढ जाती है। जागे बिना गति असभव ह। जागना सबसे पहले आवश्यक है। आचाय सघदासगणि ने जागृति का सन्देश मे कहा ह, "जागरह णरा णिच्च। जागर माणस्य वड्ढते बुद्धि।"

बृहत्कल्प भाष्य। मनुष्य जागो निद्रा का त्याग करो। जो जागता है उसकी बुद्धि भी जागती है बढ़ती है उसके विकास की अनेक सम्भावनाएं सामने खडी रहती है। अनादि काल से आत्मा कितना सोया कितना प्रमाद किया। नरक गति तिर्यन्च गति में तो जागने का सुअवसर ही नहीं मिल पाया। मानव गति एक ऐसा स्थान है जहा आत्मा जागकर चलने का, विकास का विचार कर उसे साकार रूप दे सकती है। मनुष्य गति में भी सबको जागने का, चलने का विचार नहीं आता। जागने वाले को प्रमाद छोड चलने की तैयारी करनी ही चाहिए न मालूम कब मृत्यु इस सुअवसर को झपट ले।

इस श्रेणी की आत्मा प्रकाश बोध तो पा लेती है पुरुषार्थ के मार्ग पर धीरे २ डगमग चलने का प्रयास भी करती है धर्माचरण की ओर अग्रसर भी होती है उसके कदमों में गति पराक्रम तो है पर कहीं कही ठोकरे लगने से रुक जाती है। रुकती चलती ठहरती गाड़ीवत् गृहस्थ धर्म से आराधना में तत्पर रहती है। पर एक सैनिक वत् युद्ध के मोर्चे पर लड़ाई की पूरी तैयारी कर लड़ रहा है परन्तु इतना जोश उमंग उत्साह अभी नही आता। अतः इससे भी आगे बढने की आवश्यकता है।

५. **समुत्थितात्मा**—इस श्रेणी की आत्मा सम्यक प्रकार से निद्रा का त्याग कर प्रमाद को छोड कमरकस वीरता उत्साह एव हिम्मत से आगे बढ़ती है। यह आत्मा सर्वश्रेष्ठ श्रेणी की है गन्तव्य स्थान का भान है। लक्ष्य का निर्धारण है बोध है पांव मे शक्ति है जीवन मे पुरुषार्थ है। प्रत्येक कदम लक्ष्य की ओर ही बढ रहा है। विना लक्ष्य व्यक्ति भटक जाता है ठोकरे खाता है गुमराह हो जाता है उसका मूल्य भी क्या हो सकता है। कहा भी है "A man without aim is like a smell less flower waterless tank, pennyless bank' चलने से पूर्व गन्तव्य स्थान का एवं मार्ग का ज्ञान होना अनिवार्य है। चलने से पूर्व बटोही राह की पहचान करले। तत्पश्चात् उस संकल्प को आकार रूप देते हुए इस श्रेणी की आत्मा आगे बढती जाती है। मार्ग की कठिनाइयों से जूझने की शक्ति है उसमें, अतः घबराता नहीं है फिसलता नहीं, हारता नहीं पर निश्चलता से चलता रहता है। विवेक चक्षु से देखकर कदम बढ़ाता जाता है। इस प्रकार की संप्रति आत्मा को ही वीरात्मा कहा गया है।

आज श्रेणी तीन एवं चार को उपदेश की आवश्यकता है। सोये हुए को मार्ग क्या वताना? जो चल रहा है उसे भी कुछ कहने की आवश्यकता नही। जगे हुए को बैठाना है बैठे को चलाना है। तभी तो आचार्य विजय वल्लभ सूरि महाराज बारम्बार कहते है उठो जागो, जो सोये हुए है जागें, जागने वाला उठकर बैठे, बैठने वाला खड़ा हो जाए, खड़े होने वाला चल पड़े, चलने वाला दौड़े अर्थात् जीवन में गति प्रगति की आवश्यकता है। अब तो जागो बहुत सोये। कब तक नीद लेते रहेगे। नीद खोलकर सोचो हम क्या थे हमें क्या करना है? जीवन के अमूल्य क्षण वीते जा रहे हैं पुनः वापिस नही आयेगे।

जरा अपनी करवट बदलकर तो देख।
पड़े ही पड़े आंख मलकर तो देख।
जमाने की रंगत बदलने लगी है।
हवा और आलम मे चलने लगी है।
धूप दुनियाँ की ढलने लगी है।
हरएक कौम गिरकर संभलने लगी है।

—●—

चिन्तन के गवाक्ष में

सा० श्री प्रगुणा श्रीजी म०

"सध्या का समय था। पश्चिम दिशा के गवाक्ष मे बैठे अचानक गगन मण्डल ने मेरी दृष्टि को अपनी तरफ आकर्षित किया। मैंने देखा कि हरे, पीले, लाल, काले रग क्षितिज को रग रहे हैं। कुछ ही क्षणो मे क्षितिज की मनमोहक रग लीला समाप्त होने लगी। तत्क्षण मन मे विचार आया कि ठीक इसी तरह जीवन के रग भी अदृश्य हो जाएगे। मृत्यु का अन्धकार छा जायेगा। अनन्त-2 जन्मो से नितान्त पराभूत, असहाय, निरुपाय, अनाथ सा यह जीव भटक रहा है। इस अन्त हीन ससार में कितनी आकाक्षाए कामनाए, कल्पनाए, सकल्प विकल्प इस मन में उभर रहे हैं। सोचा कि मुझे मुक्ति चाहिए, परन्तु प्यारे लगते हैं राग और द्वेष के असख्य बधन। इन बन्धनों को तोडने का यह सुनहरी, सुहावना स्वर्णिम, सुअवसर मप्रति-काल मे सुलभ हुआ है अत हे जीव तू विचार कर कि "को मम कालो ? कि एअस्स उचिय" अर्थात् यह मेरा कौन सा काल है ? इस काल के योग्य क्या है ? तो अन्तरात्मा से ध्वनि गू जती है कि

यह वह काल है जहाँ आत्मा के स्वरूप मे बाधक आए कर्मों के पर्दे को तोडा जा सकता है, जहाँ मोह की नदी में बहकर भव समुद्र में डूब जाने के बदले वीतराग के शासन रूपी नाव मे बैठकर भव मे पार उतरा जा सकता है। पहले जो नाव मिली थी वह छिद्र वाली थी, क्योकि मोक्ष का लक्ष्य नहीं था। आज ही आज सूझा है तो अखण्ड रूपी नाव मे बैठकर कम जाल मुक्त क्यो न हो जाऊँ।

तिर्यञ्च का काल भी देखा जब मैं वृषभ था गाडे मे 30-40 मन भार भरा हुआ था, मध्याह्न के समय वैशाख जेठ महीने की गर्मी तप रही थी जमीन अग्नि के समान उष्णा थी तृषा का पार नहीं, अति परिश्रम भूख भी जोरदार, शरीर भी पसीने से तर, मुँह मे से फीन छूटती थी, ऊपर से गाडी वाले की लोखण्ड मार, इसी कारण अन्तर मे भारी क्रोध की ज्वाला जलती थी। वह क्रोध भी क्यों ? कारण कि वह ऐसा ही काल था। माथे पडा है, क्षमता से भोग कर्म की निर्जरा होगी, ऐसा वहाँ पर कौन समझाता, और समझने जितनी बुद्धि भी कहाँ थी जबकि आज मानव भव मे यह काल है कि जहाँ समाधि, समता, सहिष्णुता लाकर कर्मों की सुन्दर निर्जरा की जा सकती है। पहले का काल असयम का था, आज सयम का है, पहले का काल राग का था, आज विराग का है, पहले का काल द्वेष का था अब उपशम का है। अत हे जीव तू घडी भर बैठकर विचार तो कर कि कैसा उत्तम समय तुम्हें प्राप्त हुआ है। अत हिसाब लगा कि अभी तक तूने क्या किया है और अभी क्या करने योग्य है, क्योकि ऐसा स्वर्णिम समय तुझे मिला है कि चार गति मे चिरकाल से भ्रमण कराने वाली कषाय चौकडी, रस का कारण भूत सना चौकडी इन दो चौकडी से उत्पन्न होने वाले अतिरौद्र ध्यान के प्रत्येक की दुर्ध्यान चौकडी स्त्री, देश, राज्य, भोजन सम्बन्धी विकथा चौकडी ये चार चडाल चौकडी का अन्त यहा पर किया जा सकता है। दूसरी गतियो के समय मे इसका

भान ही कहाँ था और इनको दूर करने का सामर्थ्य तथा संयोग ही कहाँ था ? यहाँ पर तो भान भी है, संयोग भी है, सामर्थ्य भी है, तो मैं इन सभी को बढ़ा रहा हूँ या घटा रहा हूँ। यहाँ पर तो विषयों से विरागी बन कर सर्व विरति भी धारण कर सकता हू परन्तु संसार के वैभव विलास की ठंडी हवा लगने के पश्चात् यह जीव भूल जाता है। प्रमाद की गहरी नींद का पर्दा चेतना के भान को भुला डालता है। जिससे आत्मा सुप्तावस्था मय हो जाती है। आज आवश्यकता है प्रमाद की नीद का त्याग करके कर्मो के साथ संग्राम करने की। यदि हम इस प्रकार का पुरुपार्थ करेगे तो अवश्य ही कर्म की जंजीर को तोड़ कर आत्मा को लघु बना लेगे। लघु आत्मा ही उर्ध्वगमन की अधिकारी होती है।

महान् पुण्योदय से मानव का जीवन मिला अनन्त उपकारी परमात्मा का शासन मिला। राग द्वेप रहित वीतराग देव मिले, पंच महाव्रतधारी निर्ग्रन्थ गुरु मिले, दया मूलक धर्म मिला है। सम्पूर्ण सामग्री को प्राप्त करके इसका सदुपयोग एवं दुरुपयोग मानव के अपने हाथ में हैं। यह मनुष्य का जीवन एक चौराहे के समान है। जैसे चौराहे पर खड़ा व्यक्ति स्वेच्छानुसार किसी भी दिशा मे जा सकता है। इसी प्रकार मनुष्य गति रुपी चौरस्ते पर खड़ा व्यक्ति देव गति, नरक गति, तिर्यन्च गति, मनुष्य गति मे से किसी की टिकिट ले सकता है। इससे बढकर भी यहाँ पर ही आठ कर्मो की जजीर को तोड़ कर पंचम सिद्धि गति को भी प्राप्त कर सकता है। अन्य किसी भव से नही। ऐसा यह सुनहरी अवसर वर्तमान में हस्तगत हुआ है इसे भौतिक चकाचौध में नहीं खोना है। इसका लाभ उठाना है।

हमें एकान्त में बैठ कर अन्तरात्मा मे बातें करनी चाहिए कि मैं कौन हूँ, मैं कहां से आया हूँ, मेरा स्वरुप क्या है, मैं कहां जाऊँगा, मेरा क्या होगा, ये कुटुम्बी जन कौन है, मेरा इनके साथ संबन्ध क्यों हुवा, यह सम्बन्ध सत्य है या असत्य इसे छोड़ूं या रखूं।

इसके अतिरिक्त विवेक पूर्वक शान्त भाव से वीतराग के सामने बैठ कर चिन्तन करना चाहिए कि हे प्रभु ! मैं कर्म का सत्वर नाश कब करुंगा, आध्यात्मिक ज्ञान के तात्विक सिद्धान्तों का अनुभव कब करुंगा। हे प्रभु ! मैंने नवतत्व पढ़ा, पर नवतत्व मय न हुआ, क्षेत्र समास पढ़ा पर अन्तर के शत्रुओं का समास करना न सीखा, संग्रहणी पढ़ी पर आत्म निग्रह न किया। मैंने चोविस दड़ंक पढ़े पर अन्तर के दड न छोड़े मैंने कर्म ग्रन्थ का अभ्यास किया पर कर्म प्रकृतियो का त्याग करने का प्रयत्न न किया। उदय मे आए कपायों को शान्त करने का प्रयत्न न किया। आपकी द्रव्य स्तवना की पर भाव स्तवना से आत्मा को भावित न किया, सद्गुरु मिले पर सद्ज्ञान प्राप्त नही किया, मेरी क्या गति होगी। इस प्रकार यदि यह जीव चिन्तन करे आत्म निरीक्षण करे तो अवश्य ही कर्म की जंजीर को तोड़ कर शाश्वत सुख को प्राप्त कर सकता है, आत्मा से परमात्मा नर से नारायण, पुरुष से पुरुषोत्तम बन सकता है। परन्तु आज हमारी गति ही विपरीत है। आज तो मानव ने भौतिकता में फँस कर आध्यात्मिकता को तो तिलान्जलि ही दे दी है। आज हमें घर से राग है प्रभु के मन्दिर से विराग है, सम्बन्धियों से राग है, साधर्मियों से विराग है, धन से राग है धर्म से विराग है, सिनेमा की तस्वीरों से राग है प्रभु प्रतिमा से विराग है, फिल्मी गानों से राग है, धार्मिक स्तवनों से विराग है, नोविलो से राग है, धार्मिक पुस्तकों से विराग है। जब हमारी दिशाएं गलत है तो जीवन में शान्ति की स्वांस कैसे मिल सकती है। तभी तो एक कवि ने कहा कि–निरोग सन्तान घटते जा रहे हैं, बेजान सन्तान बढ़ते जा रहे है।

(शेष पृष्ठ 24 पर)

जिन-वाणी

संकलक—श्री हीराचन्द वैद

गत वर्ष मणिभद्र में हमने आ० श्री पदमसागर सुरिश्वर जी के पर्युषण पर्व के प्रवचनों से उद्धृत वाक्य प्रस्तुत किये थे जो पाठकों के लिए काफी प्रेरणादायी रहे। अमूक प्रसंगों पर आ. भगवतों द्वारा दिये गये प्रवचन श्रावको के लिए महान मूल्यवान व उपकारी होते है उनका संकलन कर जन साधारण तक पहुँचाने का प्रयत्न सदैव, विशेष-कर पर्युषण सदृश्य भरा पर्व पर अति लाभकारी सिद्ध होते हैं, उसी अनुरूप आबु (देलवाडा) तीर्थ प्रतिष्ठा पर आ० श्री विजय रामचन्द्र सूरीश्वर जी म० के प्रवचनो के कुछ उद्धरण यहां प्रेषित किये जा रहे हैं। आशा है हम सबके लिए ये प्रेरणादायी बनेंगे और इनका मनन कर हम अपने जीवन में इन्हें आधार भूत बनायेगे।

(मूल व्याख्यान गुजराती मे)

\+ \+

जिनको धन की कीमत नही होती वे ही आत्मार्थे श्री जिन बिम्बो की प्रतिष्ठा का लाभ ले सकते हं। धन तो जीवन का प्राण लेने वाला है। धन पंचेंद्रिय में से जीव को एकेंद्रिय बनाने वाला है। धन को कीमती मानने वाला धनवान नही पर धन का गुलाम है। अतः धन को परिग्रह नाम का पाप और हाथ का मैल समझने वाला ही शुभ प्रसगो का लाभ लेकर ऐसे प्रसंगों को आत्मा का सच्चा उत्सव बना सकते हं।

जिनके हृदय मे भगवान बैठे हो, उनको ही पैसा पाप लगे। 'पाचमा परिग्रह' सारे जैन मात्र बोलते हैं बलिक परिग्रह को पाप तो सब ही दर्शन-कार मानते हैं। इतने पर भी जिनको पैसा पाप न लगे वे जैन तो नहीं पर उनमें आर्यपन का भी अभाव है, ऐसा कहा जा सकता है।

\+ \+

जैन शासन की साहूकारी भिन्न प्रकार की है। पैसा बोल कर तुरन्त दे देवे तो साहुकार कहावे या वायदा करे तो साहुकार कहावे ? श्री पेथडशाह महामंत्री से तुम परिचित हो क्या ? एक बार पेथडशाह और दिगम्बर मत के एक भाई, दोनों अपने अपने संघों के साथ गिरनारजी तीर्थ पर एकत्रित हो गये। उस वक्त तीर्थ किस का यह विवाद उठ खडा हुआ। अधिक बोली बोल कर जो तीर्थ माल पहिने उनका यह तीर्थ यह निर्णय हुआ। सोने की घडीया बोलने की शुरूआत हुई। पेथडशाह ने १४ घडी सोना बोला। सामने वाले आगेवान अपने संघ के पास गये, सबके दागीने उतरा कर देखा तो २८ घडी सोना हुआ। उन्होने वहां आकर २८ घड़ी सोना बोला। तुरन्त पेथड-शाह ने ५६ घडी सोना बोला और पेथडशाह को आदेश मिल गया। फौरन ही सोना लाने के लिये सांढनियों को रवाना किया। जहां तक सांढ-नियां वापस न आवे, सोना जमा न कराये वहां तक पेथडशाह ने चारों प्रकार के आहार का त्याग किया। दूसरे दिन दो घड़ी दिन बाकी रहता

है तब सांढनिया आती है, सूर्यास्त से दो घडी पूर्व श्रावक चौविहार करता है, इससे पेथडशाह व अन्य अग्रेवानो को चोविहार छट्ठ (बेला) हो जाता है। पर बोले हुये पैसे जमा कराकर ही पारणा करते हैं। श्री जिन शासन मे बोली बोलकर तुरत पैसा जमा कराये उसी का नाम सच्ची साहूकारी है।

+ +

"पैसा और उससे मिलता सुख" ये दो चीज जिनको खराब न लगे, वे हिंसा, चोरी, झूठ किए बिना रहें नही। अपने भगवान ने पैसे को फेंक दिया, सुख का परित्याग किया, भारी कष्ट सहन किये, आत्मा के दोषो का नाश किया और गुण को पैदा किया, रागी मिट कर वीतरागी बन, शनतज्ञानी बन कर उन्होने जगत को कहा "पैसा और पैसा से प्राप्त होने वाले सुख मे फसाओ नही जो इन दो मे फसे तो दुःखी हो जावोगे, उस वक्त फिर बचाने नही आयेगा। कोई सुखी कर सकेगा नहीं। आज ऐसे मनुष्य है जो प्यासे मरते है पर कोई पानी पिलाने वाला नहीं, भूखे मरते है पर कोई खिलाने वाला नही, रोग से पीडित है और दुःखी है पर उन्हे कोई सुखी करने वाला नही।

नाम के लिये, कीर्ति के लिये, लोगो मे प्रशसा हो इसलिये दान करने वालो की जन शासन मे फूटी कोडी की कीमत नही। लक्ष्मी बहुत बुरी, ससार मे डुबाने वाली, उन्मार्ग ले जाने वाली है इसलिये सन्मार्ग मे जितना उपयोग होवे वह अच्छा है जिससे लक्ष्मी छूट जावे इस भावना से दान देवे तो ही दान धर्म सच्चा माना जावे।

× ×

ऐसे प्रतिष्ठा महोत्सव दान धर्म के महोत्सव है। पैसे वाले उसमे अच्छा लाभ ले सकते है। जिनके पास पैसा न होवे वे पैसा खरचने वालो को हाथ जोडें, सच्ची अनुमोदना करे। जिनके पास पैसा होवे फिर भी खरचने का मन नही होवे वे विचार करे "मैं तो पैसे के पीछे मरता हू पैसे के पीछे पागल बना हुआ हू और इस सारे पैसे को ये सब ककर की जैसे उडा रहे हैं मुझे भी ऐसी सद्बुद्धि आवे तो बहुत अच्छा हो। ऐसी भावना कर हृदय मे रोये तो ही उनका कल्याण हो जावे।

× ×

धर्म कौन कर सके? जो अधर्म से डरे वह। अधर्म से कौन डरे? जो पैसा और पैसे से मिलते हुए सुख को खराब समझे। एक तरफ भगवान को ज्ञानी मानना, अच्छा मानना और दूसरी तरफ भगवान ने छोडा उसको सही मानना! इन दोनो बातो का मेल कैसे बैठे। पुण्य है वहा तक तो ठीक है, पुन्य पूरा हुआ कि हालत खराब होने वाली है।

× ×

भगवान कहते हैं पैसा पाप रूप है उसका भगवान की आज्ञा मुजब उपयोग करे वह उसका सदुपयोग है। बोली का पैसा जो बोले उसको तुरन्त चुका देना यह पहले नम्बर की साहुकारी है। परन्तु आज के विषम काल मे विषम व्यवहार के कारण पास मे पैसा न होवे पर आने वाला होवे तो जैसे आवे वैसे तुरन्त देव द्रव्य जमा करा देना चाहिये परन्तु स्वय के उपयोग मे नही लेना चाहिये।

× ×

पैसे की व्यवस्था वास्ते व्यवस्थापक नही बनने का। मन्दिर जीर्ण होवे और पैसा बैंक वगैरह मे जमा कराकर रखे तो वह भारी पाप बाधता है। व्यवस्थापक बनने वालो को मन-वचन-काया और धन का भोग देने की तैयारी रखनी चाहिये।

+ +

मुख्य बात यह है कि बोली बोल कर उसका पैसा तुरन्त या जैसे आवे वसे पहले भरपाई कर

देना चाहिये। उपज अधिक हो या थोड़ी इसका बहुत महत्व नहीं है। मेरी निश्रा में इतनी उपज हुई यह कहलाने में कल्याण नहीं हो जाने का। बोली का पैसा तुरन्त भरपाई कर देने में ही आनन्द आता है। उस वक्त जैसे भावो की वृद्धि होती है पीछे वह रहती नहीं। बड़ी-बड़ी बोलियां बोलने के बाद क्या होता है इसका वर्णन करने जैसा नहीं है। इसी कारण आज अधिकतर लोगों के पेट में धर्मादे का द्रव्य गया है और इससे ऐसा पापोदय आता है कि सुखी होते हुये भी सद्‌बुद्धि जागती नहीं और दुर्बुद्धि टलती नही - बेचारे जन्म बिगाड़ रहे हैं, मरण बिगाड़ रहे हैं और मोक्ष से दूर जा रहे है।

+ +

आज तुमको धन जितना कीमती लगा है उतना दान कीमती लगा है? दान के लिये धन इकट्‌ठा करना नहीं है परन्तु धन नामक भूत आ लगा है उससे छूटने के लिये दान है। तुम धन को प्रथम स्थान देते हो और दान को दूसरा. इसलिये तुम्हारा दान धर्म रूप बनता नहीं।

+ +

बोली का पैसा जंचे जब देवे - इस प्रकार की जो हवा शुरू हुई है इससे बहुत नुकसान हुआ है। इस प्रणालिका से बहुतो के पेट मे धर्मादे का द्रव्य जाता है। दान की तो बात यह है कि बोल कर तुरन्त देने में जो भावोल्लास आता है वह पीछे नहीं आता।

+ +

शक्ति वालों को बोली बोलकर तुरन्त पैसा दे देना चाहिये। बोली बोलकर लक्ष्मी की मूर्च्छा ही उतारने की है। बोली बोलकर नाम लिखाने का मन होगा तो तुमको सच्चा लाभ नहीं मिलेगा। वहीवटार नाम लिखे तो उनकी भक्ति है। पर बोलने वाले को जो नाम लिखाने का मन हुआ तो उसके लिये ठीक नहीं। अतः निःस्वार्थ भाव से, मोक्ष के अर्थीपणे मिले हुये धन का जो सदुपयोग करोगे तो लाभ होगा।

+ +

सच्ची बात यह है कि श्री वीतराग देव के शासन से देव द्रव्य, ज्ञान द्रव्य और साधारण द्रव्य के भण्डार रखने में आते थे। जैसे भगवान की मूर्ति को हाथ जोडना वैसे ही तीनों भण्डारों को भी हाथ जोड़ा जाता था। जब कभी कोई आकस्मिक दैविक या राजनैतिक आपत्ति आवे और कोई सम्पन्न सुखी व्यक्ति न होवे तब उनका उपयोग किया जाता था। परन्तु वर्तमान काल मे लोगों में ऐसी दुर्बुद्धि पैदा हुई है कि अनेको की दृष्टि धर्मादा द्रव्य की तरफ जाती है इसीलिये हमे भी इस द्रव्य को तुरन्त खर्च देने के लिये कहना पड़ता है।

× ×

धनवानों के प्रति हमारी आँख लाल नहीं, पर वे जिस प्रकार जी रहे है इससे उनका क्या होगा, इसकी हमे दया आती है इसलिये तुमको बचाने के लिये हम चिल्ला चिल्ला कर यह धन बुरा है यह समझाने का प्रयत्न करते है। जो धन खर्चते है इससे हमे आनन्द होता है कि भाग्यशाली है, भगवान की आज्ञा उसे जंची और यह इस रूप में त्याग कर रहा है। जोर देकर हमे किसी से त्याग कराना नही है इससे उसका कल्याण भी नहीं है।
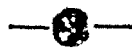
कर्म रोग की चिकित्सा

गुरुदेव पू० आ० श्रीमद् विजय भुवन भानु सूरिजी महाराज विरचित पञ्चसूत्र भावानुवाद मे से सकलित प्रेषक—मुनि श्री भुवन सुन्दर विजयजी म०

साधक आत्मा को तप और सयम की क्रियाए पीडा नही पहुँचा सकती और परिषह एव उपसर्ग उस व्यथित नही कर सकते। जैसे सनत्कुमार चक्रवर्ती ने शरीर मे सोलह रोगो की भारी पीडा होने पर भी सात सो साल तक लगातार सयम और तप की कष्टक्रिया सहर्ष अप्रमत्त भाव से जारी रखी, क्योकि साधक जानता है कि ये तप और सयम की कष्टक्रिया से मेरे कर्मरोग की चिकित्सा हो रही है। मेरी आत्मा को अनादिकालीन कर्म रोग की पीडा है, वह भयानक कर्मरोग तप सयम रूप कठोर चिकित्सा से ही जायेगा। इसीलिए तप और सयम की कडी चिकित्सा करने मे उसको आनन्द होता है, जैसे कोई दर्दी व्यक्ति रोग मुक्ति के लिए ओपरेशन आदि चिकित्सा करवाने पर भी परेशानी महसूस नहीं करता और स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए सहर्ष चिकित्सा का कष्ट उठाता है।

एक दृष्टान्त लीजिए—कोई व्यक्ति कैंसरादि महा व्याधि से ग्रस्त है। महाव्याधि की पीडा से खिन्न हो गया है और वेदना मे परेशान हो गया है। व्याधि से मुक्ति होने पर ही सुख चैन मिलेगा तथा यही रोग मेरे सब दुःखो का कारण है ऐसा उसने जान लिया है, स्वास्थ्य के लिए उसकी तीव्र उत्कठा है। चिकित्सा हेतु वह कोई कुशल ज्ञाता डाक्टर की तलाश करता है, फिर ये डॉक्टर अबूझ नही हैं ऐसा आप्त पुरुषो से जानकर चिकित्सा शास्त्र के सम्यग् ज्ञाता डॉक्टर के पास वह जाता है, वरना अनपढ डाक्टर से रोग की सम्यग् चिकित्सा तो दूर रही, रोग और भी बढ जाने की सम्भावना अधिक है। हाथ जोडकर दीन वदन से अपने रोग का निवेदन करता है, फिर अर्ज करता है कि डाक्टर साहब इस कैंसर रोग से परेशान हो गया हूँ, आपकी कृपा से जरूर मेरा रोग मिट जायेगा। आप मेरी चिकित्सा करो। मैं आपका बहुत आभारी हुँगा।

डॉक्टर प्राथमिक रूप से चिकित्सा करके दवाई देते हैं, मगर फायदा बहुत कम होता है, तब

डॉक्टर का कहना मानकर, व्याधि की गम्भीरता को जानकर सम्यक् चिकित्सा हेतु होस्पिटल में भरती होता है। अब तो डॉक्टर की आज्ञा और इच्छा के मुताबिक रोग नाश करने वाली सत्क्रिया मे सम्यक् प्रकार से विधिपूर्वक प्रवृत्त होता है। डाक्टर की बताई हुई सब दवाइयाँ स्वाद में कटु होने पर भी आनन्द और उत्साह के साथ करता है। कुपथ्य को छोड़कर अब वह नियमनों मे आ गया है। स्वेच्छाचार को छोडकर डॉक्टर ने बताया है वैसा ही व्याधि के अनुकूल हलका पथ्य भोजन करता है।

नियमन से और परहेजी से कैन्सर की भयकर पीडा से कुछ मुक्त होता है, अल्प स्वास्थ्य का अनुभव करने लगता है। पीडा की शान्ति से जैसे-जैसे सुख चैन मिलने लगता है वैसे-वैसे वह औषध-पथ्य और डाक्टर पर अधिकाधिक आदर करता है। उसकी आरोग्य की अभिलाषा भी वढती चलती है।

औषधी कटु होने पर भी वह नाराज नही होता और जैसा डॉक्टर वताते है वैसा कठोर से कठोर नियमों का उत्साह से पालन करता है क्योंकि उसी में वह स्वास्थ्य का सुख देखता है।

स्वास्थ्य का आंशिक लाभ होने पर आरोग्य के विषय मे वह और भी आग्रही वन जाता है। फिर डाक्टर के कहने पर ओपरेशन के लिए भी तैयार हो जाता है। व्याधि का आंशिक उपशम द्वारा खाज्-दाह आदि की परेशानी और पीड़ा कम होने पर उसे विश्वास हो गया है, इसीलिए ओपरेशन से होने वाला शारीरिक कष्ट और मानसिक व्यथा का वह अनुभव नहीं करता। मनोवांछित की प्राप्ति के लिए ओपरेशन आदि के कष्ट को सम्यक् प्रसन्नतापूर्वक झेलता है, और अन्तत सम्यक् चिकित्सा के कारण भयंकर व्याधि मे मुक्त हो जाता है। आरोग्य प्रदायक डॉक्टर का महान उपकार मानता है।

इसी प्रकार कर्म रूपी भयानक व्याधि से ग्रस्त जीव कर्म सम्वन्धी आधी-व्याधि-उपाधि-जन्म-जरा रोग-शोक-मरणादि की भयानक पीडा का अनुभव कर चुका है। सब दुःखों का मूल यही कर्मरोग है ऐसा जानकर वास्तव में कर्म रोग से उद्विग्न हो गया है और कर्मरोग मिटाने हेतु सद्गुरु का संपर्क करता है। सद्गुरु के सत्संग से निरावाध मोक्षावस्था का सुख जानकर रोग मिटाने के विषय में उसकी लालसा बढती है। फिर विशेष रूप से आत्मव्याधि की चिकित्सा हेतु सद्गुरु की तलाश करता है। इस विषय में आप्तजनों की सलाह लेता है, क्योंकि मरीज जानता है कि अनभिज्ञ-अल्पज्ञ अगीतार्थ कुगुरु मे और उसकी कूट चिकित्सा से कर्मरोग कम होने के बजाय और बढ़ जायेगा, फिर असाध्य भी हो सकता है, इसीलिए आगमज्ञ प्राज्ञ अरिहंत की संहिता वाले सद्गुरु की शरण मे जाता है। विज्ञप्ति करता है कि—"मेरा कर्मरोग मिटा दो।"

कर्मरोग के महान चिकित्सक, सदागमज्ञाता और शुभचिन्तक सद्गुरु उसके रोग को पकाने के लिए प्राथमिक रूप से जिनपूजा, सामायिक-प्रतिक्रमण, स्वाध्याय वाखताहि औषध देते है और "पापो से वचते रहना" ऐसा पथ्य वताते है। जैसे-जैसे वह साधक औषध और पथ्य का सेवन करता है, वैसे-वैसे कर्मरोग से अल्प मुक्त होता है। उताप दूर होने से शान्ति का अनुभव करता है। अब स्वास्थ्य के लिए उसकी उत्कंठा और भी बढ जाती है।

फिर सद्गुरु की प्रेरणा से, विशेष रूप से कर्म व्याधि की भयकरता को पहचान कर सम्यक् चिकित्सा क्रिया रूप प्रव्रज्या को स्वीकारना है, यानि चरित्र जीवन स्वरूप होस्पिटल मे भरती होता है। चरित्र जीवन स्वरूप होस्पिटल में भरती होकर वह साधक वाह्य और अभ्यन्तर रूप से असंग वनने को सद्गुरु ने बतायी अष्टप्रवचनमाता, पचमहाव्रत,

दस प्रकार का यतिधर्मादि पालन रूप आपधी या दिलचस्पी से सेवन करते-करते और प्रमाद तथा स्वच्छाचारादि रूप कुपथ्य के त्याग के साथ निर्दोष भिक्षावृत्ति आदि रूप पथ्य का सेवन करने-करते वह अशत कर्म की व्याधि से मुक्त हो जाता है।

अत स्वास्थ्य वढन पर उसके मोह की अल्प निवृत्ति होती है । फिर इष्टवियोग, अनिष्ट सयोगादि द्वारा उत्पन्न होने वाली वेदना उसको व्याकुल नही कर सकती । स्वानुभव से वह स्वस्थता को जानकर सद्गुरु ने बताई हुई तप-सयमादि अनुष्ठान क्रिया मे और भी दिलचस्पी से सलग्न रहता है, कष्ट को हर्ष से झेलता रहता है और विशुद्ध अन्त करण से सयम और तप रूप चिकित्सा मे प्रवृत्त होता है।

विशेष रूप से स्वच्छदाचार और आपमति का छोडकर सद्गुरु के बहुमूल्य सूचनो का पालन करते करते वह कर्म व्याधि के बहुत से विकारो से मुक्त होता है। पर भावो की मन्दता घटने से भावारोग्य का आशिक लाभ पाने से मुमुक्षुकी सयम और तपादि विविध अनुष्ठानो के प्रति रुचि सुचारु होती है और सुखदायक गुरुदेव के प्रति सम्मान और भी वढ़ता है।

जैसे कैंसर का रोगी डाक्टर के कहने पर कष्टो के सामने नहीं देखता हुआ ओपरेशन रूप चिकित्सा म सानन्द प्रवृत्त होता है, वैसे मुमुक्षु साधक भी कर्मरोग दूर करने के लिए धार्मिक अनुष्ठानो मे विशेष रूप से आदरशील बन जाता है अत भूख आदि परीषह और मरणान्त उपसर्ग आने पर भी सम्यक् प्रकार से आनन्दित होकर झेलता है। क्योकि उसको सम्यग् ज्ञान है कि भारी कर्मरोग भारी कष्ट उठाये बिना जायेंगे नहीं।

अत स्वास्थ्य बढ़ने पर उसके शुभ भाव की वृद्धि म ज्वार आती है, इसीलिए उसके चित्त की स्वस्थता बनी रहती है और "यह करने मे ही मैं मोक्ष रूपी स्वास्थ्य पाउगा, फिर न रहेगा जन्म, न जरा, न रोग, न शोक, न मरण" ऐसा जानकर तप तथा सयमादि की क्रिया मे इति कर्तव्यता की जाग्रति रखता है । शुभभाव की वृद्धि और शुभलेश्या बढ़ने पर अब वह राग-द्वेषादि द्वन्द्वो से विरहित प्रशान्त हो जाता है। स्वास्थ्य दायक गुरु का महान उपकार मानता है । गुरु को उचित रूप से निश्छल भाव से स्वार्थ या दृष्टिराग से नही किन्तु परमार्थ भाव से महान उपकारी समझता है।

कर्मरोग की चिकित्सा के लिए सद्गुरु के पास जाकर, चरित्र की होस्पिटल मे भरती होना और स्वच्छाचार को त्याग कर सम्यग् रीति से सयम और तप आदि रूप औषध का सेवन करते-करते और अवसर आने पर ओपरेशन रूप परीषह और उपसर्ग को सम्यक् रीति से सहन करते करते सिद्धावस्था रूप परम स्वास्थ्य पाने के लिए मुमुक्षुको यह सदेश "पच सूत्र कार" ने दिया है। प्रेरणा लेकर पालन करके मुमुक्षु का भावारोग्य प्राप्त करें यही शुभेच्छा।

जैन शासन—

सर्व मगल मागल्य, सर्व कल्याण कारण ।
प्रधान सर्व धर्माणा, जैन जयति शासनम् ॥

सब मगलो मे मागल्य रूप, सब कल्याणो का कारण, समस्त धर्मों म प्रधान एसा जैन शासन विजय प्राप्त करता है।

❋ जयपुर के विशिष्ट तपस्वी ❋

३४ उपवास की आराधिका
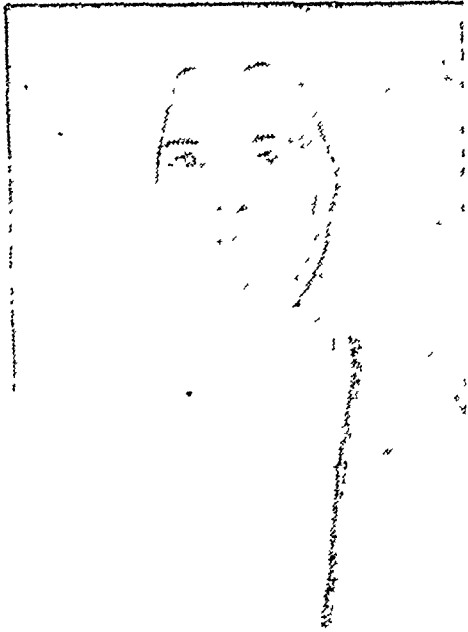
सा० श्री विशदयशा श्रीजी म०

मासक्षमण की आराधिका
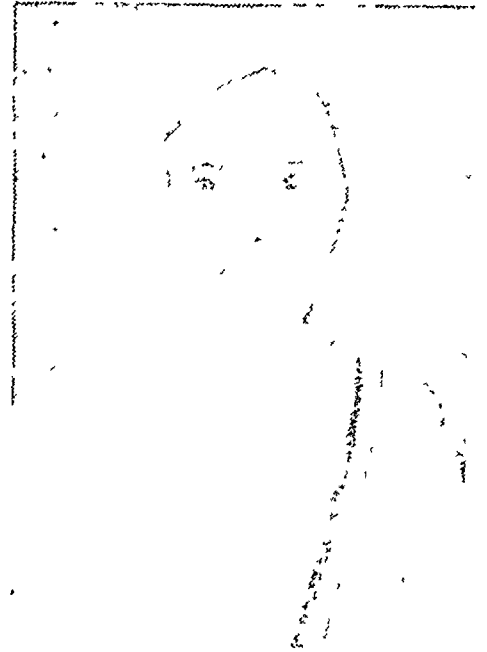
सा० श्री विभातयशा श्रीजी म०

प० पू० आचार्य श्री १००८ श्रीमद् विजय विक्रमसूरीश्वरजी म० सा० की निश्रावर्ती साध्वी श्री सर्वोदयाश्रीजी म० सा० की आज्ञानुवर्ती पू० सा० श्री शुभोदयाश्रीजी म० सा० की उपरोक्त दोनों सुशिष्याओं में से सा० श्रीविशदयशा श्रीजी म० ने ३४ उपवास की आराधना की है। सा० श्री विभातयशा श्रीजी म०सा० के मासक्षमण की तपस्या जारी है तथा यह पृष्ठ छपने तक २० उपवास पूर्ण हो चुके थे।

इसी तरह से स्थानकवासी आमनाय के प० पू० आचार्य श्री नानालालजी मा० सा० के शिष्य परम पूज्य श्री पुष्पमुनिजी म० सा० के भी इस पृष्ठ के छपने तक ४० उपवास हो चुके थे और अभी तक तपस्या जारी है।

अन्य तपस्वी

श्री माणकचन्दजी कर्णावट	मास क्षमण
श्रीमती इचरजबाई लूनावत (तपस्या जारी है)	४१ उपवास
श्रीमती चम्पादेवी धर्मपत्नि श्री पदमचन्दजी छाजेड	मास क्षमण
श्रीमती चन्द्रकलादेवी धर्मपत्नि श्री विनयचन्दजी सेठ	मास क्षमण
श्रीमती शान्तादेवी धर्मपत्नि श्री छगनलालजी सिंघी	१५ उपवास

ऐसे महान तपस्वियों के श्री चरणों में कोटिशः नमः शतः वन्दन एवं हार्दिक अभिनन्दन।

जीवन का सार

लब्धिशिशु

जगत मे सुप्रसिद्ध तीन लोक है। उर्ध्वलोक तिर्च्छालोक और अधोलोक। जिसमे महान पुन्योदय से मनुष्यभव की प्राप्ति होती है। इसी मनुष्य भव से देव, गुरु और धर्म इन त्रिवेणी सगम का सुयोग प्राप्त होता है। अतएव कई भव्यात्मा धर्माराधन करके देवसुख और मोक्षसुख की प्राप्ति करते है। इसी में से ही एक भव्यात्मा देवसुख का भोगी हरिणगमेषी नामक देव था।

आसन्नोपकारी चरमतीर्थपति परमात्मा महावीर देव प्रत्यक्ष थे, उसी समय सौधर्मेन्द्र देव आकर प्रभु महावीर परमात्मा से अंजलिबद्ध प्रार्थना करता है। हे प्रभो ! चौदहपूर्व का ज्ञान कहां तक स्थित है ? हे कृपावतार ! फरमाइए। प्रभु फरमाते है—भो सौधर्मेन्द्र ! मेरे निर्वाण के ६०० वर्ष पश्चात एक पूर्व जितना ही स्थित रहेगा। इसी भरतक्षेत्र में गुजरात की पवित्र भूमि पर पाटलीपुर नामक नगर है। पाटलीपुर के राजवंशी कुल में राजपुत्र का जन्म होगा। वह नास्तिक होगा।

हे कृपानिधि ! वह भव्यात्मा वर्तमान में कहां है ? तेरे ही साथ देवलोक का सुख भोग रहा है, वह हरिणगमेषि देव है। सौधर्मेन्द्र विचारमग्न हुआ और स्वस्थान गया। देवलोक में हरिणगमेषि देव को अपना भविष्य कथन सुनाया। हरिणगमेषि देव ने आश्चर्य से पूछा। हे नाथ ! क्या मैं बोधिदुर्लभ होऊंगा ? सौधर्मेन्द्र ने आश्वासन द्वारा मार्ग दर्शन दिया। तेरे विमान में लिखदे—'जो भी देव मेरा स्थान प्राप्त करे वो मुझे प्रतिबोध करने आजाय। हरिणगमेषि देव देवलोक से च्यव करके पाटण नगर में राजकुल में उत्पन्न हुआ।

पुत्र वधाई से प्रमुदित महाराजा ने अमात्यादि सेवक वर्ग को आदेश दिया, सम्पूर्ण नगर को सुशोभित बनवाओ, याचकों को दान दो, कर माफ करदो, जिन मन्दिरो मे महोत्सव प्रारम्भ करवाओ। सपूर्ण नगर के राजमार्गो को सौरभमय बनाओ।

रत्नकुक्षी माता हर्षान्वित हो कर लालन-पालन करने लगी। अनेक धायमाताएं राजपुत्र का प्यार से पालन-पोषन करने लगी। युवराज ने अब शैशवावस्था को त्याग कर युवावस्था में प्रवेश किया। जन्म से ही अतुल पराक्रमी राजकुमार धर्मविमुख होकर संसार सुख में लिप्त हो गया। 'लिप्यते निखिलो लोको, ज्ञान-सिद्धो न लिप्यते' माता–पिता ने धर्माराधना में जोड़ने का अत्यन्त प्रयास किया परन्तु भारी कर्मी आत्मा धर्माराधना मे संयोजित न हुआ। राजकुमार के पूर्वस्थान पर आया हुआ देव दैवीसुख में मग्न बना हुआ विविध प्रकार के सुख भोग रहा था।

एक दिन देव विमान में हरिणगमैषि देव द्वारा लिखित पंक्ति दृष्टिगोचर होते ही वहां उत्पन्न हुआ देव ज्ञानोपयोग से देखकर राजपुत्र को धर्म-

माग मे नियुक्त करने का अथाह प्रयास किया तथापि बोधिदुर्लभ आत्मा की धर्म के प्रति जिज्ञासा न हुई। देव के अनेकानेक यत्न पश्चात् भी राजकुमार ने धर्म मार्ग में निष्ठा न रखी। देव स्व स्थान गया।

एक दिन राजकुमार न घोडे पर सवार होकर शिकारार्थ जगल की ओर प्रयाण किया। देवमाया से घोर श्याम बादल छागए। कई वन्य पशुओ की भयकर त्रासजनक चिचियारी सुनकर राजकुमार भयभीत बना। इधर-उधर दौडने लगा। दैवी प्रकोप के कारण इधर-उधर टकराता राजकुमार घबरा गया। इतने मे देव ने अपना मूल स्वरूप प्रकट करते हुए कहा—'हे भद्रे! कई बार मैंने तुझे चारित्र ग्रहण करने की प्रार्थना की किन्तु तेरे अत स्थल मे नहीं जमने से आज प्रत्यक्ष हुआ हू। तेरे पूर्वभव के हरिणगमैषि नामक देव स्थान से मैं आया हू। यह माया मैंने ही फैलाई ह। अभी तु धर्म म स्थिर बनकर दीक्षा ग्रहण करने का निश्चय कर, वर्ना यहा से जाना मुश्किल ह। कुमार ने विषम परिस्थिति जानकर दीक्षा ग्रहण करने की निश्चित भावना प्रदर्शित की। देव आनन्द विभोर होते हुए विकुर्वित माया का सहरण करके स्व स्थान पहुचा।

युवराज ने घर आकर माता-पिता से नम्र-निवेदन करते हुए चारित्र ग्रहण करने का दृढ सकल्प बतलाया। माता-पिता ने हर्षाश्रु से पुत्र को चरित्र ग्रहण करने की अनुमति प्रदान कर दी। फिर वही राजकुमार भावोल्लास पूर्वक भगवती प्रव्रज्या अगीकार करके आज श्री देवर्धिगणी क्षमा श्रमण के नाम से जैन शासन में प्रसिद्ध हुए। श्रमण सस्था आज पर्यंत सर्व शास्त्रों को कण्ठस्थ करके स्वाध्याय में लीन रहती थी, उसमे मदता आने के कारण श्री देवर्धिगणी क्षमाश्रमण जी ने वल्लभीपुर नगर में शास्त्र लिखने प्रारम्भ किये। वे शास्त्र आज भी हमारे सन्मुख है। ऐसे परमोपकारी शास्त्रवक्ता देवर्धिगणी भगवत को शत-शत वदना हो।

आज भी हमारा महान् पुन्योदय है कि हमारे सामने प्राचीन महर्षियो का जीवन कथन मौजूद है। देवर्धिगणी क्षमाश्रमणजी की आत्मा देवलोक के दैवी सुख मे मग्न बनी हुई भी अपने भावी जीवन की चिता करती हुई शासन रसिक आत्मा देव विमान मे पक्ति लिखकर भावी जीवन का पाथेय तैयार करती गई। अपन भी जैन कुल म पैदा हुए है। देवाधिदेव परमात्मा के शासन को पाया है। क्या अपने मे धर्मरुचि नहीं है? वीतराग कथित मार्ग का अनुसरण वाले गुरु भगवन्त वीतरागवाणी रूप प्रेरणा श्रोत बहाते भव्यात्माओं को कुभकर्ण की निद्रा मे जाग्रत करने क लिए प्रयत्नशील है। उठो! जागो! और आराधना मे लगो। जीवन का सम्पूर्ण सार तीन तत्वो की अर्थात देव, गुरु और धर्म की आराधना साधना तप-जप द्वारा शुद्धात्मा बनने मे है। आप और हम शासन को पाकर धन्य बने यही शुभेच्छा।

जैन जयति शासनम्

आपदा कथित पन्था इन्द्रियाणामसयम।
तज्जय सपदा मार्गो, येनेष्ट तेन गम्यताम्॥

इन्द्रियों का असयम—स्वच्छाचार आपत्तियो का—दुर्गति का माग है और इस पर सयम—विजय सपत्ति का—सद्गति का मार्ग ह, दानो में से जो इष्ट है वो माग पर चलें।
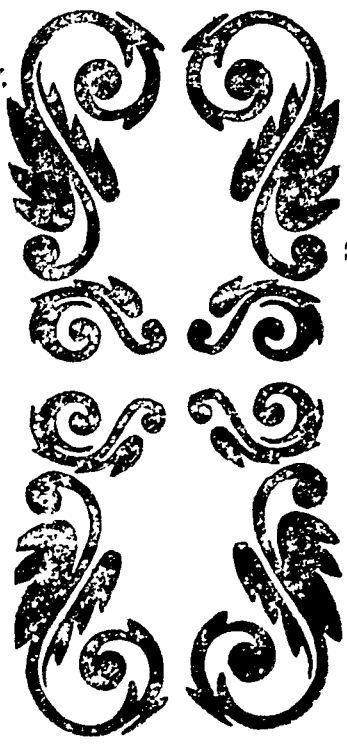
मैत्री की साधना
का
पावन पर्व

मुनि श्री रत्न सेन विजय जी म. सा.

पर्वाधिराज पर्युषण महापर्व "मैत्री की साधना" का पावन पर्व है। समय बीतता है और प्रतिवर्ष पर्युषण महापर्व आता है, परन्तु यह पावन पर्व अपने लिए सार्थक तभी बन सकता है जब हम इस पावन पर्व के सन्देश "मित्ती मे सव्वभूएसु" "सर्व जीवों के साथ मैत्री" को अपने जीवन मे उतारें।

मैत्री तो हम सभी करते हैं। परन्तु किसके साथ यही विचार करने का है। अपने स्वजन-सम्बन्धी तथा लौकिक हितैषियों के साथ में मैत्री रखते ही है। अरे! अपने पुत्रादि के प्रति तो व्याघ्र और सिंह भी मैत्री रखते हैं। परन्तु उस मैत्री की यहा बात नही है। क्योकि वह तो स्वार्थ जन्य है। आपका स्वार्थ पूर्ण होता है, इसलिए एक अज्ञात व्यक्ति के साथ भी मैत्री धारण कर लेते हैं, परन्तु आपकी वह मैत्री कब तक ? जब तक आपके स्वार्थ की सिद्धि न हो। तब तक ऐसी मैत्री वास्तविक मैत्री नहीं है।

मैत्री तो उसका नाम है-जिसमें दूसरे के आत्म हित का विचार हो और इस मैत्री के पात्र हो-जगत के सर्व जीव।

सर्व जीवों के साथ मैत्री के सम्बन्ध को जोडने का यह पावन पर्व है- यही मुक्ति की साधना है-परन्तु याद रखे सर्व जीवों के साथ मैत्री की भूमिका पाने के लिए आपको दो शर्तें स्वीकारनी होगी।

1— खामेमि सव्व जीवे-मैं सर्व जीवों को क्षमा करता हूँ।

2— सव्वे जीवा खमन्तु मे-सर्व जीव मुझे क्षमा करें।

इन दो शर्तों के पालन के बाद ही सर्व जीवो के साथ में मैत्री संभव है।

अनन्त की इस यात्रा मे कषायो की अधीनता के कारण आज तक हमने अनन्त जीवों को पीड़ा पहुँचाई है-और सम्भव है-दूसरे जीवो ने अपने को पीडा पहुचाई हो।

किन्हीं दो व्यक्तियो के बीच मे मैत्री का नाता तभी जुड सकता हैं, जब वे अपनी पूर्व भूलो का समाधान कर देते हैं। यदि एक के भी मन मे पूर्व का वैर जागृत रहगा तो उनकी वह मैत्री-मैत्री नही कहलायेगी। –वह मात्र ढोंग होगा–ढकोसला होगा। और वह मैत्री दीर्घकाल तक टिक नही सकेगी–वह कुछ ही दिनो मे समाप्त हो जायेगी।

यहा मैत्री का अर्थ है स्वार्थ का विसर्जन करना। जो सुख अथवा शान्ति हम अपने लिए चाहते है–वह सबके लिए इच्छे। जगत के सब जीव भय मुक्त बनें, जगत के सब जीव पाप मुक्त बनें, जगत के सर्व जीव दुःख मुक्त बनें। यही मैत्री भावना का साकार रूप है, यह भावना हृदय मे तभी पैदा हो सकती है जब जगत मे रहे हुए सर्व जीवो को आत्म तुल्य मानेगे।

इस मैत्री भाव की दृढ़ता के लिए अनिवार्य है–पूर्व कृत वैर भावो को भुला देना। इसी कारण सांवत्सरिक पर्व का दूसरा नाम क्षमापना पर्व है। पर्युषण के प्रथम सात दिनो में अपनी हृदय भूमि को सुकोमल बनाने का है–अर्थात् वास्तविक क्षमापना करने के लिए सात दिनो मे पूर्व भूमिका को तैयार करने का है।

"क्षमापना" से वैर की परम्परा शान्त हो जाती है। व्यवहार मे भी हम देखते हैं कि जो व्यक्ति अथवा चोर अपनी भूल को स्वीकार कर लेता है, उस भूल के लिए खेद व्यक्त करता है और भविष्य मे उस भूल का पुनरावर्तन नही करने का आश्वासन देता है–ऐसे व्यक्ति की भूल माफ कर दी जाती है अथवा उसे अल्प दण्ड दिया जाता है।

उसी प्रकार आध्यात्मिक जगत मे भी यदि हम चाहते है कि हमे दुख प्राप्त न हो तो उसके लिए सब पापो का हृदय पूर्वक पश्चाताप करना चाहिये और जिन जिन व्यक्तियो के मनो भाव को दुःख पहुंचाया हो उनसे क्षमा याचना करनी चाहिये।

"क्षमापना" तभी सच्चे मायने मे हो सकती है–जब हम दूसरों की भूलो को हृदय से माफ कर देंगे पुन उस भूल को याद नहीं करेंगे-दूसरे की भूल को वहीं समाप्ति कर देंगे।

सामान्यतया मनुष्य की यह आदत होती है कि वह अपने द्वारा हुई भूल के लिए दूसरों से यही अपेक्षा रखता है कि वे मेरी भूल को क्षमा कर दें। परन्तु दूसरो की भूल को तुरन्त क्षन्तव्य गिनने के लिए वह तैयार नही होगा – बस! यही अपनी बड़ी कमजोरी है और जब तक इस भूल का निराकरण नहीं होगा, तब तक मुक्ति मार्ग से विकास सम्भव नहीं है और इसी कारण से तो मैत्री की भूमिका के पूर्व की दो शर्तों मे भी सबसे पहली बात – 'अन्य जीवो की भूलो को माफ करता हू' –रखी गई है।

पहले दूसरे की भूलों को माफ करना सीखें, उसके बाद ही हम अपने अपराधो के लिए, दूसरो से क्षमा मांगने के योग्य बन सकते हैं।

मैत्री भाव से सब की मुख्यता है–मैं की गौणता है-मैत्री भाव से सब जीवो के कल्याण की कामना है।

साधक जीवन के लिए मैत्री भावना अनिवार्य है–किसी एक भी प्राणी के प्रति अमैत्री का व्यवहार रख कर, न कोई आत्मा आज तक मुक्त बनी है और न ही भविष्य मे बनेगी।

इस पर्व के उपलक्ष मे क्षमापना कार्ड भेजने का प्रचार बहुत बढ गया है–परन्तु यह समझना चाहिये कि "क्षमापना-कार्ड" यह तो औपचारिक विधि है। क्षमापना-कार्ड भेजने पर भी यदि अपने हृदय मे से वैर की आग शान्त नहीं होती है और पुन वैसा ही व्यवहार करते हैं तो उस "क्षमापना—कार्ड" के भेजने न भेजने का कोई अर्थ नही है।

इस पावन पवित्र पर्व के लक्ष्य-बिन्दु को नजर समक्ष रख सभी कोई मैत्री की साधना कर आत्म कल्याण साधो–इसी शुभ भावना के साथ। □

योग-निष्ठ बुद्धिसागर सूरिजी की अनुकरणीय गुण-ग्राहता

—श्री अगर चन्द नाहटा
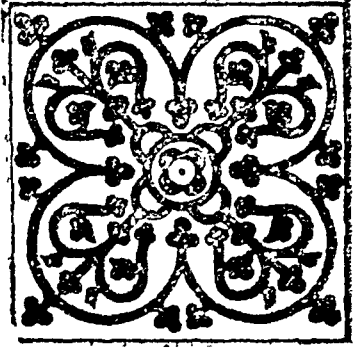
गुणी बनने का सबसे सरल व अचूक उपाय है–गुणो के प्रति अनुराग या आकर्षण और गुणी-जनो के प्रति आदर और भक्ति भावना। प्रत्येक मनुष्य मे थोड़ा बहुत दोष या अवगुण सभी में रहे हुए है। अतः महापुरुषों ने कहा है कि यदि दोप ही देखना है तो स्वय में देखो, जिससे उन अवगुणों को दूर करने की भावना व प्रयत्न हो सके। दूसरो के तो गुण ही देखो, चाहे वे थोड़े व छोटे ही हों। पर चूकि वे अपने में नही है अतः उन्हे एन्लार्ज करके बड़े रूप मे देखो। इसी तरह छोटे–छोटे दुर्गुण भी अपने को नीचा गिराने वाले है, घातक है। इसलिए उन्हे छोटे रूप मे न देखो, न समझो उन्हे एन्लार्ज करके बड़े रूप मे देखो। ताकि उन दोपो को हटाने की तीव्र और उत्कट भावना हो। दोप हटेंगे और गुण प्रगटेंगे न तभी तो कोई व्यक्ति गुणी बन सकेगा। इस-लिए गुणानुराग और गुणी के प्रति भक्ति भाव इन दोनों बातो की आत्मोत्थान के लिए बहुत ही आवश्यकता है।

20 वीं शताब्दी के योगनिष्ठ बुद्धिसागर सूरि जी जैन कुल में नहीं जन्मे, वे पटेल जाति के थे। पर जब जैनों के साथ उनका सम्पर्क हुआ तो वे पक्के जैनी बन गये। जैन ग्रन्थो का खूब अध्ययन किया। और योग साधना द्वारा प्राप्त अपनी लगन, अनुपम शक्ति से शताधिक ग्रन्थ विविध विषयों के लिख पाये। संस्कृत और गुजराती दोनो मे उनका लेखन, धारा-प्रवाह से होता रहा। उन्होने जिस विषय पर लिखना प्रारम्भ किया उस विषय का एक अनुपम ग्रन्थ बना डाला। सैकड़ो 'भजन' बनाये जिनका उनके समय मे भी बहुत अच्छा प्रचार हुआ, वे जन जन के कण्ठहार बन गये। ऐसे महापुरुप ने बहुत से श्रावको का एक ऐसा मन्दिर बनाया जिन्होने अध्यात्मिक ज्ञान प्रसारक मण्डल नामक सस्था की स्थापना करके थोड़े वर्षों में ही उनके रचित एव उनके प्रस्तावित शताधिक ग्रन्थों का प्रकाशन करके खूब सस्ते मूल्य मे अच्छा प्रचार किया।

श्रीमद् बुद्धि सागर सूरि जी ने स्वय साधना करने के अतिरिक्त जैन धर्म और आध्यात्म के प्रचार मे भी बहुत ही उल्लेखनीय कार्य किया। उनके ग्रन्थो को पढकर अनेको मुमुक्षुओ ने आध्यात्मिक भावना को जाग्रत एवं परिपुष्ट किया। मुझे भी उनके साक्षात्कार का अवसर तो नहीं मिला पर उनके आत्म प्रदीप आदि ग्रन्थो मे

बहुत ही आध्यात्मिक प्रेरणा मिली। उनके मार्गो वाले भक्त श्रावक मोहनलाल जी वकील और उनके सुपुत्र मणि भाई भी मेरे प्रेरक व प्रशंसक रहे। बम्बई में मणिभाई का सत्संग योग बनता वह तो अब भी मुझे स्मरण होने पर आनन्दित करता है।

पूज्य बुद्धि सागर सूरि जी की एक विशेषता मुझे बहुत ही आकर्षित करती है। वह है उनकी महान गुण ग्राहकता। खरतरगच्छ के श्रीमद् देवचन्द जी के आगमसार को अनेक बार पढ़ने से उनमें देवचन्द्रजी के प्रति विशेष भक्ति भाव प्रगट हुआ। और इसी के परिणाम स्वरूप उन्होंने श्रीमद् देवचन्द्र जी के छोटे बड़े जो भी ग्रन्थ उस समय उपलब्ध हो सके बड़े प्रयत्न पूर्वक अपने भक्त श्रावकों को प्रेरणा देकर संग्रहित करवाये एवं उन्हें प्रकाशित करवाये। श्रीमद् देवचन्द्र भाग-1 के निवेदन में वकील मोहनलाल हेमचन्द्र पादरा वालो ने निवेदन लिखा है "संवत 1968 ना चैत्र मासमा सद्गत गुरुवर्य श्रीमद बुद्धिसागर सूरिजीए मने तथा मारा सहाध्यायी बन्धुओं ने आग्रह पूर्वक प्रेरणा करी के श्रीमद् देवचन्द्र जी महाराजना बनावेला तमाम ग्रन्थो मेलवी छपाववामां आवे तो घणो लाभथाय, तेओ श्रीनी ते सूचना शिरोधार्य करी श्रीमद देवचन्द्रजी महाराजना बनावेला ग्रन्थो मेलववा प्रवृत्ति शुरू करी, घणो स्थले पत्रोलखी, जाते जई वगेरे तजवीजथी जेटला ग्रन्थो मल्याते तमाम श्रीमद् देवचन्द्र भाग 1-2 ए नामथी छपावी बहार पाड्या ते ग्रन्थोनी तमाम नकलो टुंक व खत मांसपी जवाथी ने मागणी चालु रहे वाथी तेनी बीजी आवृत्ति बहार पाडता घणो हर्ष थाय छे।"

संवत 1968 में जो पूज्य बुद्धिसागर जी की प्रेरणा से श्रीमद्देवचन्द्र जी के ग्रन्थो की खोज प्रारम्भ हुयी थी, इसका विशेष विवरण तो श्रीमद् देवचन्द्र ग्रन्थ के प्रथम संस्करण के प्रथम भाग में ववरण छपा था पर वह ग्रन्थ मेरे पास नही है। संवत 1972-73 में वह प्रथम भाग 1028 पृष्ठो का प्रकाशित हुआ था और उसका मूल्य मात्र दो रुपये रखा था। उसका दूसरा भाग संवत् 1975 मे प्रकाशित मेरे संग्रह में हैं। जो करीब 1200 पृष्ठो का है व मूल्य साढ़े तीन रुपये हैं। श्रीमद् देवचन्द्र ग्रन्थ की द्वितीयावृत्ति 3 भागो मे प्रकाशित करने की योजना थी और उसका प्रथम व दूसरा भाग तो संवत् 1985 मे प्रकाशित हो गया पर तीसरा भाग शायद प्रकाशित ही नही हो पाया इन भागो में श्रीमद् देवचन्द्र जी की रचनाओं का नवीन रूप से वर्गीकरण किया गया है। प्रथम भाग में गद्य और दूसरे भाग मे पद्य और तीसरे भाग मे संस्कृत ग्रन्थों के प्रकाशन की योजना बनायी गयी थी। श्रीमद् देवचन्द्र जी के ग्रन्थ सारे श्वेताम्बर जैन समाज के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुए। आध्यात्मिक रचनाओं की कमी की पूर्ति बहुत अंशों मे हुयी। और हजारो व्यक्तियों में आध्यात्मिक प्रेरणा जागी। अतः श्रीमद् बुद्धिसागर सूरिजी का यह प्रयत्न बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ। इसके बाद तो हमने भी बहुत सी अज्ञात रचनाएं प्राप्त कर एवं कई के हिन्दी अनुवादादिक भी प्रकाशित करवाये पर मूल प्रेरणा बुद्धिसागर सुरि जी की है।

श्रीमद् देवचन्द्र जी की जीवनी के सम्बन्ध मे भी आपने (बुद्धिमय) काफी खोज करवायी। पहले तो साधारण जानकारी ही मिल सकी। पर अन्त मे कवियण द्वारा रचित "देव विलास" नामक एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक काव्य मिला, जिससे

देवचन्द्र जी की जीवनी सम्बन्धी बहुत सी महत्वपूर्ण बातो का पता चला । श्रीमणिभाई और मोहनलाल देसाई आदि ने भी काफी प्रकाश डाला है ।

पूज्य बुद्धिसागर सूरि जी ने श्रीमद् देवचन्द्र भाग-2 के प्रथम संस्करण में 55 पृष्ठो की प्रस्तावना स्वयं ने लिखी है । उसके प्रारम्भ मे महोपाध्याय देवचन्द्र जी की 25 श्लोक बनाकर भाव स्तुति की है । इनसे सूरिजी की देवचन्द्र जी के प्रति कितनी गहरी श्रद्धा थी, पता चलता

इस 25 श्लोक की स्तुनि में से कुछ पद्य यहां उद्धरित किये जा रहे हैं ।

ज्ञानदर्शन चारित्र-व्यक्तरूपाय योगिने
श्रीमते देवचन्द्राय, संयताय नमोनमः ।।१।।
द्रव्यानुयोगगीतार्थो व्रताचार प्रपालकः
देवचन्द्रसमः साधु, र्वा चीनो न दृश्यते ।।२।।
वाचकस्य महारागी, सर्वजैनोपकारकः
संप्रति यस्य सद्ग्रन्थैं, स्तत्वबोयः प्रजायते ।।३।।
आत्मोद्वारामृतं यस्य, स्तवनेषु प्रदश्यते
विविधतापतप्तानां, पूर्ण शान्ति प्रदायकम् ।।४।।
आनन्दघनगीतार्थ—पदस्तवन पूजकः
गच्छ खरतरे तस्य समः कोऽपिनयो गिराट् ।।५।।

श्रीमद् देवचन्द्र जी के प्रति बुद्धिसागर सूरि जी का आवर्पण सवत् 1954 से प्रारम्भ हुआ और दिनोदिन उनके प्रति उनकी भक्ति बढ़ती गई । प्रस्तावना में उन्होने स्वयं लिखा है कि लेखक ने श्रीमद्ना पुस्तकों पैकी आगमसार नो परिचय थयो, मेहसाणा मां सं. 1954 नी सालमां श्रीमद् रविसागर गुरु महाराज साहवनी सेवामां रहेवानुं थयुं हतुं ते वखते आगमसारनुं प्रथम वांचन थयुं अने त्यारथी द्रण्यानुयोगनी रुचि बधी, आत्मज्ञाननी रुचि वधी । लगभग सोवार आगमसार ग्रन्थ वांच्यों, तथा नय चक्रसार वांच्यो, तेमज 'चोबीशी' वांची, तेथी जैन तत्व ज्ञाननी पूर्ण श्रद्धा थइ अध्यात्मज्ञाननी श्रद्धा मां 'आनन्दघन जीनी चौबीसी तथा श्रीमद् आनंदधननां पदो उपयोगी थयां, तेवी रीते द्रव्यानुयोगना ज्ञानमां श्रीमद् देवचन्द्रजीनां पुस्तको उपयोगी थयां तेथी तेमना पुस्तको वांचवानी जिज्ञासा वधी अने तेथी साधु जीवनमां शोध खोल करी । घणाखरां पुस्तको वांच्यां वालजीवोने जैन तत्वज्ञान थवामां श्रीमदनां पुस्तको अत्यंत उपयोगी छे ।" ×श्रीमद् देवचन्द्र जी नी पैठे द्रव्यानुयोगना ज्ञान माठे तथा अध्यात्मज्ञान माठे आटला पुस्तकों लख्याहोय ऐवी व्यक्ति जणातीनथी, तेथी खरतगच्छमा सर्व श्री प्रथम नम्बरे श्रीमद् देवचन्द्र जी आवे छेः श्रीमद् देवचन्द्र जी महाराजना पेठे कोई ए आत्मसम्बन्धी उद्‌गारो निकाल्या नथी, तेथी देवचन्द्रजीए जे काम कर्युं छे अने जैन कोमनी आगल जे वारमो मूक्यो छे तेथी जैन कोम तेमनी अनृणीछे एम कथ्या विना चालतुं नथी आवा महापुरुषना आत्मानी केटली वधी उन्नति थइ छे तेनो ख्याल ते दशाने प्राप्त करनार ने आवी शके तेम छे ।

वास्तव में ही श्रीमद् देवचन्द्रजी भी ऐसे ही गुणग्राही व्यक्ति थे । खरतरगच्छ के होने पर भी उन्होंने विना भेद भाव के गुणानुराग के कारण ही तथा उपाध्याय यशोविजय के 'ज्ञानसार' पर ज्ञान मंजरी टीका की रचना की और तपागच्छ के श्री जिन विजय जी, उत्तम विजय जी और विवेक विजय जी को आगमादि का अध्ययन करवाया, जिसको समकालीन उल्लेख प्राप्त है । जिन विजय जी को विशेप आवश्यक भाष्य का अमृत या रहस्य देवचन्द्र जी से ही प्राप्त हुआ था ।

महामाध्य ग्रमृत लह्यो, देवचन्द्रगणि पास ।।

इसी प्रकार उत्तम विजय निर्वाणरास मे भी लिखा है ।

खरतरगच्छमाहि थया रे नामे श्री देवचन्द्ररे ।।
जैन सिद्धांत शिरोमणि रे लोल धैर्यादिक गुणवृन्दरे ।।7।।

देशना जास स्वरुपनी रे लोल, ते गुरुना पदपमरे
वदे ग्रमदावाद मा रे लोल, पूर्जाशानि छद्म रे ।।8।।

इसी तरह विवेक विजय जी को ग्रध्ययन करवाने का उल्लेख 'देव विलास' मे इस प्रकार है —

तपगच्छ माहे विनीत विचक्षण,
श्री विवेक विजय मुनिंद्र ।
भणवा उद्यम करता विनयी घणु,
उद्यमे भणावे देवचन्द्र ।
गुरु सदृश मन जाणे विवेक जी,
निजमति मे निश दिन ।
विनयादिक गुण श्री गुरु देखी ने,
विवेकजी ऊपर मन ।"

गच्छ या मत के ग्राग्रह से ऊपर उठकर ग्रानन्दघन जी ग्रादि ने एक महान ग्रादर्श उपस्थित किया । तो श्रीमद् देवचन्द्र जी व बुद्धिसागर जी ने गच्छ की मर्यादा मे रहते हुए भी गुण ग्राहकता को महत्व दिया । ग्राज ऐसे गुणानुराग की बहुत ही ग्रावश्यकता है । प्राणीमात्र के प्रति समभाव की बात तो बहुत दूर की है कम से कम जैन सम्प्रदाय के सभी लोग सम्प्रदायवाद से ऊपर उठ कर एक दूसरे को पूरी सहायता व सहयोग दे दूसरो के ग्रच्छे कामों की सराहे ग्रौर गुण ग्राहकता के ग्रादर्श को ग्रपनावें तो यह एक बहुत महत्वपूर्ण कार्य होगा ।

श्राविका – इसका ग्रर्थ है उपासिका । श्रावक के लिए वर्णित धर्म का पालन करने वाली स्त्री ।

भगवान महावीर के सघ मे 14,000 साधु, 36,000 साध्विया ग्रौर 4,77,000 श्रावक श्रविकाए थी ।

श्रमण ग्रौर श्रमणी को पाच महाव्रतों का पालन करना पडता है

-: मैत्री का महात्म्य :-

गुजराती लेखक—परम पूज्य पन्यास प्रवर

श्री भद्रंकर विजय जी गणिवर्य

अनुवादक—मुनि रत्नसेन विजय

मा कार्षीत् कोऽपि पापानि,
मा च भूत्कोऽपि दुःखितः।

मुच्यता जगदप्येषा,
मतिर्मैत्री निगद्यते ॥

अर्थः—कोई भी जीव पाप न करो, कोई भी जीव दुःखी न हो, सभी जीव मुक्त बनो ! इस प्रकार की बुद्धि (भावना) मैत्री कहलाती है

इच्छा की प्रबलता

इस जगत मे इच्छा किस को नही होती है ? संसारी जीवमात्र के हृदय में किसी न किसी प्रकार की इच्छा होती ही है परन्तु उन सब इच्छाओ को एकत्रित करने में आवे तो उनका समावेश निम्नोक्त दो इच्छाओ में हो जाता है—

(1) मुझे दुःख न मिले और
(2) मैं ही सुखी बनु !

अर्थात् मुझे थोडा भी दुःख प्राप्त न हो और जगत में जितना भी सुख है-वह सब मुझे मिले।

इस प्रकार की तीव्र इच्छा जीव मात्र के हृदय मे निरन्तर होती है।

दूसरी अन्य समस्त इच्छाओ के मूल में भी यही दो इच्छाए रही होती है और यह बात भी उतनी ही सत्य है कि ये इच्छाए कभी पूर्ण नहीं हो पाती है।

इच्छा यही दुःख हैं:—

इसी कारण से तत्वज्ञानी महर्षियों ने यह सिद्धात तय किया कि :

'इच्छा यही दुःख है और इच्छा का अभाव यही सुख है।'

आहार की अयोग्य इच्छा में से मुक्त बनने के लिए शास्त्रकारों ने तपधर्म का उपदेश दिया है।

अर्थ और काम की अयोग्य इच्छाओं में से मुक्त बनने के लिए तथा मुक्ति पाने के लिए क्रमशः दान और शील धर्म के पालन का उपदेश दिया है। जिस प्रकार अर्थ काम और आहारादि की अयोग्य इच्छाए जीव के दुःख में वृद्धि और सुख मे हानि करती है, उसी प्रकार से उससे भी अधिक दुःख वृद्धि और सुख हानि का कार्य योग्य इच्छाओ के कारण हो रहा है।

श्रीर वह इच्छा हैं–मुझे ही सुख मिले श्रीर मेरा ही दुख दूर हो।

यह इच्छा सबसे अधिक कनिष्ठ कोटि की होने के कारण सबसे अधिक पीड़ाकारक है। फिर भी इसका यथार्थ ज्ञान बहुत ही कम व्यक्तियों को होता है।

इस प्रकार की कनिष्ठ इच्छा श्रीर उसमें से उत्पन्न क्लिष्ट प्रकार की पीड़ाओं का प्रतिकार हजारों रु के दान, लाखो वर्षों के शील तथा करोड़ो वर्षों के तप से भी सभव नहीं है।

दान शील तथा तप के द्वारा परिग्रह–मैथुन तथा आहारादि सज्ञाओं के जोर से विविध प्रकार की मानसिक तथा शारीरिक बाधाओं से बच सकते हैं परन्तु उन सब पीड़ाओं की अपेक्षा–'मुझे ही सुख मिले मेरा ही दुख टले इस प्रकार की अयोग्य इच्छा में से उत्पन्न मानसिक तथा शारीरिक पीड़ाओं का बल उससे भी अधिक हो जाता है।

शास्त्रकार महर्षियों ने उस अशक्य इच्छा की पूर्ति के अशक्य मनोरथ में से उत्पन्न अनत कष्टों से मुक्त बनने का जो मार्ग बताया हैं–वह मार्ग पुण्यवत व्यक्ति को ही सद्गुरु की कृपा से प्राप्त होता है।

इस प्रकार के उपाय की प्राप्ति मे जीव की आसन्नसिद्धिता अथवा अनासन्न सिद्धिता ही मुख्य काम करती है।

उपाय बिल्कुल सरल है श्रीर उसका बोध भी सुलभ है परन्तु उसकी श्रीर लक्ष्य किसी विरले व्यक्ति का ही जाता है अथवा कोई विरले आत्मा ही उस उपाय का विचार कर, उसको जीवन में उतारने के लिए कटिबद्ध बनती है।

सुख दुख निवारण का अनन्य उपाय -

स्वसुख प्राप्ति' श्रीर 'स्व दुख निवारण सबधी तीव्र सक्लेश से मुक्त बनने का एक मात्र अनन्य उपाय मैं सुखी बनु –इस इच्छा के स्थान पर सभी सुखी हो'–इस भावना का सेवन है।

इस भावना को मैत्री भाव भी कहते हैं—

शिवमस्तु सर्वजगत
परहितनिरता भवन्तु भूतगणा।
दोषा प्रयान्तु नाश,
सर्वत्र सुखी भवतु लोक'॥

इस प्रकार की अनेक भावनाए चित्त के सक्लेश के निवारण के लिए बतलाई गई है। उन सब भावनाओं मे मैत्री भावना का मुख्य स्थान है। उसका महात्म्य अगाध है।

जीव जब यह विचार करता है कि कोई भी जीव चाहे उपकारी हो अथवा अपकारी, पाप न करे दुखी न हो श्रीर सर्व सक्लेशों से मुक्त हो तब उसके चित्त के सक्लेश शात होते हुए दिखाई देते हैं।

मात्र अपने ही सुख दुख की चिंता में मशगुल श्रीर उसके परिणाम स्वरूप नाना प्रकार के दुखो का अनुभव करता हुआ जीव जब उपरोक्त विचारणा में श्रोत प्रोत बनता है, तब अत्यत शीतलता का अनुभव करता है।

धर्मानुष्ठान की सफलता का आधार —

अपने सब धर्मानुष्ठानों की सफलता का आधार मैत्री भाव की दृढ़ता पर अवलबित है अर्थात् जिस धर्मानुष्ठान में मात्र स्वार्थ (स्वहित) का ही विचार हैं–वह अनुष्ठान सम्यग् नही बन पाता है।

इसी कारण जिस अनुष्ठान के पीछे इस भावना का बल नहीं है–उस अनुष्ठान को धर्मानुष्ठान नहीं कह सकते हैं।

वास्तव में यह भावना भव नाशिनी है। □

जैन दर्शन

श्री राजमल सिंघी

जैन दर्शन के तत्वज्ञान, साहित्य एव इतिहास ने जैनो एवम् अजैनों सभी को आकर्षित किया है। इस सम्वन्ध में जर्मनी के एक दार्शनिक विद्वान डा० हर्मन जेवीको के शब्दों में "जैन धर्म एक स्वतन्त्र दर्शन है। यह अन्य सभी दर्शनों से सर्वथा भिन्न और स्वायत है और इस प्रकार यह प्राचीन भारत के तात्विक विचार और धार्मिक जीवन श्रेणी के अध्ययन के लिए अत्यन्त उपयोगी है।"

एक समय था जव जैन धर्म के सम्वन्ध में वडे-वडे विद्वानों में भी भारी अज्ञान था। कई विद्वान जैन धर्म को वुद्ध अथवा ब्राह्मण धर्म की शाखा मानते थे, कई महावीर स्वामी को ही जैन धर्म के संस्थापक मानते थे और कई जैन धर्म को नास्तिक धर्म कहते थे।

पाश्चात्य विद्वानो की दृष्टि सर्व प्रथम ब्राह्मण और वौद्ध धर्मो पर पडी और उन्होंने इन धर्मो का ही अभ्यास किया। इसके पश्चात ही उनका ध्यान जैन धर्म की ओर गया। उन्होंने आरम्भ मे यह पाया कि महावीर और बुद्ध दोनों के जीवन और उपदेश मे साम्यता थी, किन्तु ज्यो ज्यो जैन धर्म का अधिक अभ्यास किया और शोध की गई त्यो त्यो जैन धर्म के सिद्धान्त और इतिहास महत्वपूर्ण और कुछ और प्रकार के ही पाए गए। परिणाम स्वरूप डा० जेकोवी डा० पेट्रोल्ड, डा० स्टीनकोनो, डा० हेलमाउथ, डा० हर्टल इत्यादि अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने जैन तत्वज्ञान और साहित्य का अभ्यास किया और उसका यूरोपीय देशों में प्रचार किया।

जैन धर्म की प्राचीनता—

जैन धर्म जगत के सव धर्मों से प्राचीन है। जगत के धार्मिक इतिहास की ओर दृष्टि डालने से ज्ञात होगा कि जगत के विभिन्न धर्म जैसे, याहूदी, कन्फ्यूसस, क्रिश्चियन, मुस्लिम, वौध, पारसी धर्म, जैन धर्म के अनन्त वर्षो वाद हाल ही के समय मे चलाए गये है। इन सवके पहिले तो जैन धर्म के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर ही हुए हैं जिन्होने वहुत प्राचीन काल से चले आते जैन धर्म का प्रचार किया था। वुद्ध और महावीर समकालीन अवश्य थे। इस प्रकार उपरोक्त अन्य सभी धर्म जैन धर्म की दृष्टि से आधुनिक धर्म ही गिने जाते है।

प्राचीन धर्मो में तो वैदिक धर्म और जैन धर्म ही माने जाते है। इन दो धर्मो के विषय में विचार करने से प्रकट होगा कि रामायण, महा-

भारत, हिन्दु धर्म के विविध शास्त्रो और पुराणो मे जैन धम का उल्लेख है। जैन धम के इस अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव का वर्णन श्रीमद् भागवत के पाचवें स्कन्ध के तीसरे अध्याय मे आया है। ऋषभदेव भरत के पिता थे जिनके नाम से हमारे देश का नाम भारत पडा। वेदो मे भी जैन तीथ करो के नाम आने हैं। डा ग्वेरिनोट ने अपनी पुस्तक "जैन बिब्ल्योग्राफी' मे लिखा है कि इसमे कोई शका नही कि श्री पाश्वनाथ एक ऐतिहासिक महापुरुष थे, उनकी आयु एक सौ वष की थी और श्री महावीर जन्म के 250 वर्ष पूर्व उनका निर्वाण हुआ था। इस प्रकार उनका जीवन काल क्राइस्ट से 800 वर्ष पूव का था।" इन तथ्यो से सिद्ध होता है कि जैन धर्म सभी अन्य धर्मों से प्राचीन ही नहीं बल्कि अत्यन्त प्राचीन धर्म है।

तत्व ज्ञान—

जैन धम का तत्व ज्ञान, उसकी धम और नीति मीमासा, उसके कर्त्तव्याकर्त्तव्य शास्त्र और चरित्र विवेचन उच्च श्रेणी के हैं। जैन दर्शन मे अध्यात्म, मोक्ष, आत्मा और परमात्मा, पदाथ विज्ञान, न्याय इत्यादि विषयो पर स्पष्ट, व्यवस्थित और बुद्धिगम्य विवेचन है।

अन्य धर्मावलम्बियो के अनुसार जगत मे केवल दो तत्व है– जड और चेतन। जिस वस्तु में चैतन्यता नही वह जड है और इसके विपरीत चैतन्य स्वरूप आत्मा है वह जीव है। जैन तत्व ज्ञान इन विचारो मे भी आगे बढा है। वह पृथ्वी, जल अग्नि, वायु और वनस्पति को जीवमय जानता है। जीव के दो मुख्य भेद हैं—त्रस और स्थावर। स्थावर के भी दो भेद हैं–सूक्ष्म और बादर। वर्तमान वैज्ञानिको का भी मानना है कि पूरा आकाश मण्डल सूक्ष्म जीवो से भरा हुआ है। उनकी मान्यता के अनुसार उन्होंने थेक्सस नान के प्राणी को सबसे छोटा माना है। वह इतना छोटा जीव है कि यदि एक सुई के अग्र भाग पर ऐसे एक लाख प्राणी बैठे जावें तो भी इन प्राणियो को भीड नहीं मालुम होती। प्रसिद्ध विज्ञान–वेत्ता प्रोफेसर जगदीश चन्द्र बोस ने वनस्पति पर यन्त्रो द्वारा प्रयोग कर बताया है कि वनस्पति मे क्रोध लोभ इत्यादि होता है और उसमे जीव भी होता है। यही बात हजारों वर्ष पहले जैन तीथकरों ने अपने ज्ञान द्वारा बता दी थी।

जैन दर्शन के अनुसार मुल नौ तत्व है—

(1) जीव (2) अजीव (3) पुण्य (4) पाप (5) आश्रव (कम और कर्म का आत्मा के साथ सम्बन्ध होने का कारण) (6) सवर (आते हुए कर्मों को जो रोकते है) (7) बध (कर्म का बन्धन होना) (8) निजरा (कर्म का क्षय) (9) मोक्ष (मुक्ति)।

पूरा जैन दर्शन कर्म पर निर्भर है। आत्मा और कर्म का अनादि काल से सम्बन्ध है। मूल रूप मे आत्मा सच्चिदानन्दमय है किन्तु कर्मों के आवरण मे उसका मूल स्वरूप आच्छादित है। ज्यो ज्यो कर्म का नाश होता है त्यो त्यो आत्मा का मूल स्वरूप प्रकाशित होता है और सवथा कर्म के नाश होने से आत्मा स्वरूप का साक्षात्कार अर्थात मोक्ष का अक्षय सुख प्राप्त होता है। जैसे कर्म करता है वैसे ही उसको फल भोगने पडते हैं। अत जब तक कर्म का सर्वथा नाश नही होता है तब तक जन्म, जरा, मरण आदि के दुख भोगने पडते हैं।

मोक्ष—

जैन दशन में सम्यग दर्शन (Right belif) सम्यग ज्ञान (Right Knowledge) और सम्यग चारित्र (Right charcter) इन तीनो के

मोक्ष का साधन माना है। कर्मो का पूर्ण क्षय करके अखण्डानन्द सुख प्राप्त करने वाली आत्माएं पुनः जन्म नही लेती। तीर्थंकरों के जन्म से सिद्ध होता है कि जब जब जगत में अनाचार और दु ख वढता है तब तब महान् आत्माएं अवश्य जन्म लेती है और वे जगत को सन्मार्ग वताती है किन्तु मुक्त आत्माएं (जिनका संसार में आने का कोई कारण नही है क्योकि वे कर्म से मुक्त हो गए है) फिर से ससार में जन्म नहीं लेती। अतः जो महान् पुरुष जन्मते है वे मोक्ष मे गई हुई आत्माएं नही है वल्कि चार गति में भ्रमण करती हुई आत्माएं ही हैं।

जैन दर्शन के अनुसार आत्मा सम्पूर्ण आत्मज्ञान से (केवलज्ञान से) जगत के सभी भाव जान सकती है और देख सकती है और उसके वाद वह मोक्ष पद पाती है। मुक्त आत्माओं को निर्मल आत्मज्योति में से निकलता हुआ जो स्वाभाविक आनन्द होता है वही आनन्द परम सुख है। ऐसी आत्माओं को शुद्ध, बुद्ध, सिद्ध, निरजन, परमव्रह्म इत्यादि नाम शास्त्रों में दिए है।

ईश्वर—

ईश्वर के सम्वन्ध में जैन शास्त्र एक नवीन दशा वताते है। इस विषय में जैन दर्शन, प्रत्येक अन्य दर्शन से भिन्न है। जैन दर्शन के अनुसार जिसके सव कर्मो का क्षय हो गया है, ऐसी आत्मा परमात्मा वनती है। वही ईश्वर है।

जैन धर्म का एक अन्य सिद्धान्त है कि ईश्वर जगत का कर्ता नही है। वीतराग ईश्वर न किसी पर प्रसन्न होता है और न किसी पर अप्रसन्न क्योकि उसमे राग–द्वेश का सर्वथा अभाव है। ससार चक्र से निर्लेप परमकृतार्थ ईश्वर को जगत का कर्ता होने का कोई कारण नहीं है। प्रत्येक प्राणी को सुख या दुख तो उसके कर्मो के अनुसार मिलते है।

स्यादवाद—

एक वस्तु में विरुद्ध अलग-अलग गुण का स्वीकार करना स्यादवाद है। मनुष्य जो कुछ बोलता है उसके सिवाय अन्य कुछ और भी सत्य है। जैसे मै बोलता हूं कि अमुक व्यक्ति मेरा भाई है, फिर भी वह व्यक्ति किसी का पुत्र, किसी का चाचा, किसी का नाना भी है। एक ही वस्तु में अनेक गुण के विद्यमान होने की वात को मानना स्यादवाद है। सभी गुण वताने वाले अलग-अलग रूप से सच्चे है और कोई नहीं कह सकता कि दूसरी वात वताने वाला व्यक्ति असत्य है। भाई कहने वाला व्यक्ति भी सत्य है और चाचा कहने वाला भी। भाई कहने वाला व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि चाचा कहने वाला व्यक्ति असत्य है।

जैन साहित्य—

प्राचीन समय मे शास्त्र लिखने या लिखवाने का रिवाज नही था, और साधु परम्परा से आयाहुआ ज्ञान याद रखते थे। ज्यों-ज्यों समय वीतता गया त्यों-त्यो ज्ञान को पुस्तकों के रूप में लिखा गया। आगम मे जो ज्ञान है वह भगवान महावीर स्वामी के जीवन, कथन और उपदेश का सार है।

जैन साहित्य विपुल, विस्तीर्ण और समृद्ध है। ऐसा कोई विषय नही जिस पर रचे हुए अनेक ग्रंथ जैन साहित्य में न हो। इतना ही नही, इन विषयों की चर्चा वहुत उत्तम रीति से उत्तमोत्तम और विद्वता पूर्ण दृष्टि से की गई है। जैन शास्त्र सिद्धान्त या आगम के नाम से प्रसिद्ध है। सारा जैन साहित्य द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, धर्म कथानुयोग और चरण करमानुयोग इन चार विभागों में वितरित है। गणित सम्वन्धी ग्रंथ

इतने अपूर्व है कि उनमें सूय, चन्द्र, तारामण्डल, असस्य द्वीप, समुद्र, स्वग लोक नरक इत्यादि की विस्तृत जानकारी मिलती है। जैन धम के विविध काव्य, न्याय ग्र थ, योग ग्र थ, आध्यात्मिक ग्र थ, व्याकरण ग्र थ आज भी प्रसिद्ध है। प्राकृत साहित्य का उच्च कोटि का साहित्य जैन साहित्य मे ही है। कथा साहित्य तो जैन ग्र थो में अद्वितीय है। जैन स्तोत्र, स्तुति इत्यादि अनेक दिशाओ मे जैन साहित्य फैला हुआ है। जैन साहित्य के बारे मे प्रो० जोहन्स हर्टल लिखते है कि 'जैन अति-विशाल, लोकोपयोगी साहित्य के सृजनहार हैं।"

प्राकृत, सस्कृत, गुजराती, हिन्दी, तामिल भाषाओ म जैन साहित्य लिखा गया है। श्रीमद् सिद्धसेन दिवाकर' श्रीमद् हरिभद्रसूरि, श्रीमद् हेमच द्राचाय, उपाध्याय यशोविजयजी, उपाध्याय विनय विजयजी इत्यादि अनेक जैन आचार्यो ने जैन साहित्य को समृद्ध बनाने मे अपना जीवन व्यतीत किया है। इ ग्लैण्ड, जमनी, फ्रास, इटली और चीन मे जैन साहित्य का बहुत प्रचार हुआ है। श्रीमद् विजय धमसूरिजी के प्रभाव से प्रत्यान्य देशो के विद्वानो ने जैन साहित्य अभ्यास और प्रचार किया है।

अहिंसा—

"अहिंसा" जैन धर्म का जगत को अदभुत सदेश है। यो तो जगत के सभी धर्मो में अहिंसा के विषय मे कुछ न कुछ उल्लेख है किन्तु जैन धर्म ने जो सूक्ष्म रूप म अहिंसा धर्म बताया है, वैसा अन्य धर्मो म नहीं है। अहिंसा मे जो आत्म शक्ति, सयम और विश्व प्रेम है वह अन्य किसी मे नहीं है। लोकमान्य तिलक ने कहा है कि अहिंसा परमोधर्म के उदार सिद्धान्त ने ब्राह्मण धम पर चिरस्मरणीय छाप लगाई है, यज्ञ इत्यादि मे जो पशुहिंसा हुआ करती थी वह समाप्त हो गई है। जैन धम जगत को दया एव अहिंसा की ओर आकर्षित करता है। जैनो ने ही ब्राह्मणो को अहिंसक बनाया है।

इस प्रकार जैन दर्शन अन्याय धर्मो के दशन से कही ऊँचा है और इसकी अपनी विशेषताए है।

जिनेन्द्र कल्पवृक्ष—

दर्शनात् दूरित ध्वसी, वदनात् वाछित प्रद ।
पूजनात् पूरक श्रीणाम्, जिन साक्षात् सूरद्रुम ॥

हे गुणाकर आत्मा ! लाखो भवो मे दुलभ तथा जन्म-जरा-मरण रूप सागर मे पार उतारने वाला जिन वचन मे क्षण मात्र का भी प्रमाद नहीं करना चाहिए ॥

विशुद्ध दृष्टी

लब्धिशिशु

सृष्टि दृष्टि पर आधारित है, सम्यग् दृष्टि सम्यग् सृष्टि का प्रादुर्भाव करती है। सम्यग्-दृष्टि अवगुण में से भी गुण को ग्रहण करती है, और मिथ्या दृष्टी गुण में दुर्गुणों का दर्शन करती है। तभी तो कहा जाता है कि–'जैसी दृष्टी वैसी सृष्टि'। पवित्र को पवित्र दिखाई देता है, पापी को पाप यही दृष्टीकोण हमें निम्न कथानक में सें उपलब्ध होता है।

विविध रंग-बिरंगी पुष्पों से प्रकृति की सौदर्यता शोभनीय थी। चारों ओर प्रकृति का सुरम्य वातावरण छाया हुआ था। पुष्पो की सुरभि से व तावरण सुगंधित था। शीतल-सुगन्धित मद-मद वायु स्पर्श से जीव-जगत पुलकित था। चंपानगरी के महिपति जितशत्रु भुपाल वसन्त क्रीड़ा महोत्सव के लिए घोड़े पर सवार होकर प्रधानमत्री सुबुद्धि व अन्य अधिकारियों (कर्मचारी) के साथ उद्यान प्रति जा रहा था।

अकस्मात दम घोंटनेवाली, बेचैनी को उत्पन्न करने वाली भयंकर दुर्गन्ध महिपाल के नासारध्रो मे प्रवेश हो गई। नृपतिन नाक पर वस्त्र बांधकर भवां चढा के इधर-उधर देखे और बोले–"कहां से आ रही है—ये भयकर दुर्गन्ध ?"

मन्त्रीश्वर बोले–महाराज! यह नगर के मलिन पानी का नाला बह रहा है, उसकी यह दुर्गन्ध है। मन्त्री ने स्वाभाविक दृष्टी से नाली की ओर संकेत करते हुये कहा।

त्वरित गति से वायु से बाते करते हुए घोड़े तब तक उद्यान के द्वार में प्रवेश कर गये थे। पुष्पों की सुगध से मन मस्तिष्क में ताजगी एवं स्फूर्ति आ गई। राजा ने देखते हुए कहा–कितना गंदा पानी था! कितनी भयंकर दुर्गन्ध थी! अब तक मन बेचैन है, सिर चकरा रहा है।

हां हजूर! अत्यन्त भयंकर दुर्गन्ध थी उस गंदे पानी को पीछे चलते कर्मचारियों में से किसी ने हां में हां मिलाई। मंत्री मौन था। विचारों की दुनिया में विचरण कर रहा था। वह खोया-खोया सा दिख रहा था।

मंत्रीवर! कौनसी चिंता आपको सता रही है? इस नाली की दुर्गन्ध के विषय में आपकी क्या प्रतिक्रिया है? राजाने पूछा।

राजन्! यह तो प्रत्येक पदार्थ की यही परिस्थिति है। आज जो पदार्थ वर्ण-गंध से निकृष्ट है, वही पदार्थ श्रेष्ठ सर्वोत्तम भी हो सकता है, फिर पदार्थों के प्रति राग और द्वेष,हर्ष और शोक क्यों? मत्री की यह तत्वपूर्ण बात किसी को रुची

नही। अधिकारी प्रतिरोध मे बोले–आपकी यह बात हमे रुची नही। महाराजा ने भी कहा–मन्त्रीवर ! जो अच्छा है वह ही अच्छा है, जो बुरा है वह बुरा ही रहेगा। क्या इस गदी नाली के पानी को आप सुपेय मे परिवतन कर सकते है ? नही कभी नही !" महाराजा ने तीक्ष्ण व्यग कस के मत्री के तत्वज्ञान पर उपहास किया। राजा के साथ तर्क विवाद करना मूर्खता हैं। मत्री यह सोचकर मौन ही रहा।

एकदा मत्री ने महाराजा को अपने गृहागण मे साग्रह आमन्त्रित किया। राजा को षट्रस सुमधुर भोजन प्रेम से कराया। पश्चात शीतल-सुगधित जल पीने दिया। मधुर जलपान कर महाराजा अति-प्रसन्न हुए। जीवन मे प्रथम बार ही ऐसा मधुर जल पिया था। महाराजा ने पूछा– मत्रीजी ! इतना इतना मधुर व शीतल जल किस कुए का है ?

मत्री ने प्रत्युतर दिया 'राजन ! यह ही पदार्थ का स्वभाव है, कभी मलिन कभी निमल। राजा का मुख लाल पीला हो गया, भवांए चढ गई। बोले भोजन के समय भी इतनी मजाक ? क्या अपना गुप्त रहस्य मुझ से भी गुप्त रखना चाहते हो ? और अकेले ही इस मधुर मीष्ट जलपान का सुख भोगने की इच्छा है आपकी ?" राजा का दिमाग गम हो गया।

निर्दोष–मधुर स्मित सह मत्रीश्वर ने राजा से कहा–महाराज ! ऐसा कुछ भी नही है। यदि आप रहस्य जानना चाहते है तो सुनिए ! आप इस अनुचर स पूछिये यह पानी कहा से लाया है।

राजा ने अनुचर के प्रति दृष्टी उठाई। कापते हुए एक अनुचर ने कहा–'महाराज ! यह गदी नाली का जल है।' सेवक की बात सुनकर सभी स्तब्ध हो गये। चारो ओर शाती छा गई। राजा की भृकुटी ऊचे नीचे होने लगी। मत्री ने तत्क्षण कहा राजन ! इसका कहना बिलकुल ठीक है। यह जल उसी गदी नाली का ही है। मैने ही मगवाकर विविध प्रक्रिया द्वारा इसे निर्मल सुपेय बनाया है। आपने कहा था कि–क्या इस गदी नालि के जल को सुपय मे बदल सक्ते हो ? राजा को इस बात पर विश्वास ही नही हो रहा था। मत्री ने राजा के साम्ने ही उस गदी नाली का जल मगवाया और प्रयोग द्वारा शुद्ध कर दिखाया। राजा मत्री की मेधा और तत्वज्ञान की भूरि-भूरि प्रशसा करने लगे एव धन्यवाद देते रहे।

मत्री ने कहा—राजन ! यह ही हमारे जीवन का दृष्टीकोण है। हम पदार्थ के विभिन्न परिणामो पर हर्ष शोक करने लग जाते है। जबकि यह वस्तु का स्वभाव है। परिश्रम के माध्यम से अशुद्ध पदार्थ को परिष्कार करके शुद्ध किया जा सकता है। सभी पदार्थ अशुद्ध हो सकते है, फिर हम पदार्थों के निमित से मन की शाती भग क्यो करे ? जीवन की उतार चढाव की सुख दुख की स्थिति मे प्रभावित नहीं होना है, शाति मे होना है। और वही इस स्थिति मे अप्रभावित रह सकता है, जो वस्तु के स्वभाव से परिचित है। यह निमल विशुद्ध दृष्टी प्राप्त होने पर मानव लाभालाभ मानापमान एव सुख दुख मे विचलित नही होता। सत्य को देखने के लिए निर्मल दृष्टी, और सत्य को आत्मसात करने के लिए विशुद्ध चित्त की आवश्यकता है। यही सच्ची जीवन दृष्टी है।

जैन जयति शासनम्

—●—

❋ मन की शुचिता मौन है ❋

श्री संजीव प्रचंडिया 'सोमेन्द्र'

उसने बहुत गालियाँ दी और देता ही रहा, वह थका भी, नही भी। उसके आँखो मे क्रोध झलक रहा था। हो सकता है उसे किसी ने कष्ट दिया हो या उसका अज्ञान उसके क्रोध रूप में समा गया हो। बकते-बकते वह कुछ सोचने लगा। इसी बीच उसकी आंखों की दोनों कोरे भीग आई थी। तभी उसे न जाने क्या सूझा, वह उठा और पलग जा लेटा। थोडी ही देर में उसे नीद आ गई और वह सो गया। उठा तो अब वह क्रोध में नही था, बिल्कुल मौन और मुदित। मौन में विचारो का चक्र नही घूमता। घूमता कुछ भी नही है, इसलिए वह बाहर से मौन और भीतर से मुदित था। मौन था, क्योकि उसे शाति मिली थी। शान्ति मिलना सुनिश्चित था। वह घण्टों चुप रहा था। उसके चेहरे पर शान्ति की तस्वीर खींची जा चुकी थी। अब और पहले में जो अन्तर था वह ठीक कुए और कुतुब की भिन्नता जैसा।

मन चंचल है। घुमाओगे, घूम जायेगा। चलाओगे तो खूब दौड़ेगा। फिर उसे बाँधना सरल न होगा, किन्तु असम्भव भी नही। मन जैसा होगा हमारी त्रियाएँ भी वैसी ही बनने लगेगी। हमे कुछ करने से पहिले कुल–बुलाएँगी, तब तुम जैसे भी होगे वैसे ही फैल रहे होंगे। जो मैने कहा था क्रोध का रूप वह तो दहाई कहलायेगा, उससे पहिले तो मानस मे विचारों की क्रान्ति होगी और उससे भी पहिले भाव-तरंगे आलोड़ित होगी। अतः भावों की शुचिता के लिए आवश्यक है कि तन और मन को शुचिता से आपूरित किया जाय। इसीलिए जैन धर्म हमें सिखाता है : 'जैसा खाए अन्न वैसा होवे मन'।

—❁—

परिहरिज्जा सम्मं लोग विरूद्दे।
करूणः परे जणाणं न खिसाविज्ज धम्मं।

[श्री पन्च सूत्र]

धर्मी आत्मा पर ये जिम्मेवारी है कि जन साधारण धर्म के विमुख न बने इसलिये उसको लोकाविरुद कार्यो जैसे कि सातव्यसन, निन्दादि का त्याग करना चाहिए। उसे एसी प्रवृत्ति से दूर रहना चाहिए जिससे लोग उसके धर्म की अवहेलना–निन्दा करे।

याने जैन धर्मी का यह फर्ज है कि अपने बुरे आचरणों से दयापात्र संसारी जीवों के पास जैन धर्म की निन्दा मत करवाना। वरना निन्दा करने से उसको तथा निन्दा करवाने से हमको भी बोधि दुर्लभता होती है, जिसमे भवान्तर मे जैन धर्म की प्राप्ती दुर्लभ होंगी।

"संसार"

शान्तीदेवी लोढा

यह ससार वेदना-सागर, अवसादों का है आकार।
सुख की सरिता भी बहती है, हास-विलासों का है घर॥

रत्नाकर निज नाम सदृश ही है बहुमूल्य रत्न भण्डार।
किन्तु विषभरे जीवों का भी उसके उर मे आर न पार॥

मचल मचल कर चचल लहरें, पुलिनो से टकराती हैं।
विघ्नो पर वे विजय प्राप्त कर निज सर्वस्व लुटाती हैं॥

कुसुम-झाड देखो नव नव पल्लव से शोभित होता है।
कोमल हृदय तीक्ष्ण कण्टक जालों से प्लावित होता है॥

कांटो का प्रहार सह कर भी सुमन सर्वदा मुस्काता।
सुख-दुख की है उसे न चिन्ता वह निज प्रेमगान गाता॥

नील-गगन को अरुण-लालिमा मजुल परम बनाती है।
श्याम घटाए उमड-घुमड कर निज आतक जमाती हैं॥

रवि, शशि तारकगण मुस्काते, जग को करते ज्योति प्रदान।
हो निमग्न निज कार्य-क्षेत्र में, सदा अलापा करते तान॥

इसी भाति यह सृष्टि बनी है इसके उर मे हर्ष-विमर्ष।
मिलन-वियोग, सुख-दुःख, इसमें भरे हुए हैं क्रोध अमर्ष॥

किन्तु वही मानव है जिसने, सुख मे दुःख को अपनाया।
मुख पर स्मिति की रेखा रख, दुःख मे मधुर गान गाया॥

—●—

लखनऊ संग्रहालय की पुरासम्पदा तथा उसकी--एक चौबीसी

—श्री० शैलेन्द्र कुमार
बनारसी बाग राज्य संग्रहालय, लखनऊ

राज्य संग्रहालय, लखनऊ संग्रह की दृष्टि से देश के अग्रगणी संग्रहालयो मे से एक है। यह सग्रहालय सन् १८६३ ई. से प्रारम्भ हुआ है। यहाँ उत्तर प्रदेश के मथुरा जनपद के अतिरिक्त अन्य जनपदो यथा हम्मीरपुर, झासी, रायबरेली, बरेली, इलाहाबाद गोरखपुर, गोड़ा, देवरिया, उन्नाव प्रभृति स्थलो के अतिरिक्त मध्य प्रदेश बिहार एवं तमिलनाडू आदि से भी पुरा सम्पदा संग्रहीत हुई है।

यहा ब्राह्मण, बौद्ध, जैन एव मुस्लिम धर्मो के अतिरिक्त लोककला यथा वेदिका स्तम्भ पर उकेडी यक्षियाँ, शालभजिकाए उष्णीश आदि के निदर्शन प्रमुख है। इन अकित रमणियो की शरीर यष्टि, क्रीडा कौतूक, वस्त्राभूषण किस दर्शक को नही विमोहित कर लेते है। इनके अतिरिक्ति अलंकरणरूप मे प्रकृति चित्रण जैसे नदी, झरने, पर्वत, वृक्ष, लता पुष्प-विशेषतया मथरा शैली के भी कम मोहक नही है।

इस समृद्ध सग्रह मे जैन सम्प्रदाए—दिगम्बर एवं श्वेताम्बर मतों से सबद्ध पर्याप्त पुरा सम्पदा है जो दर्शको एवं शोधकर्ताओ सभी के आकर्षण का केन्द्र है। जैनकला का समग्र अध्ययन यहा के संग्रह को देखे विना अधूरा ही है—ऐसा विचार पुराविदो एव कला मर्मज्ञो का है। जैन कला यहाँ ई० पू० द्वितीयशती से लेकर संवत् १६८८ तक की
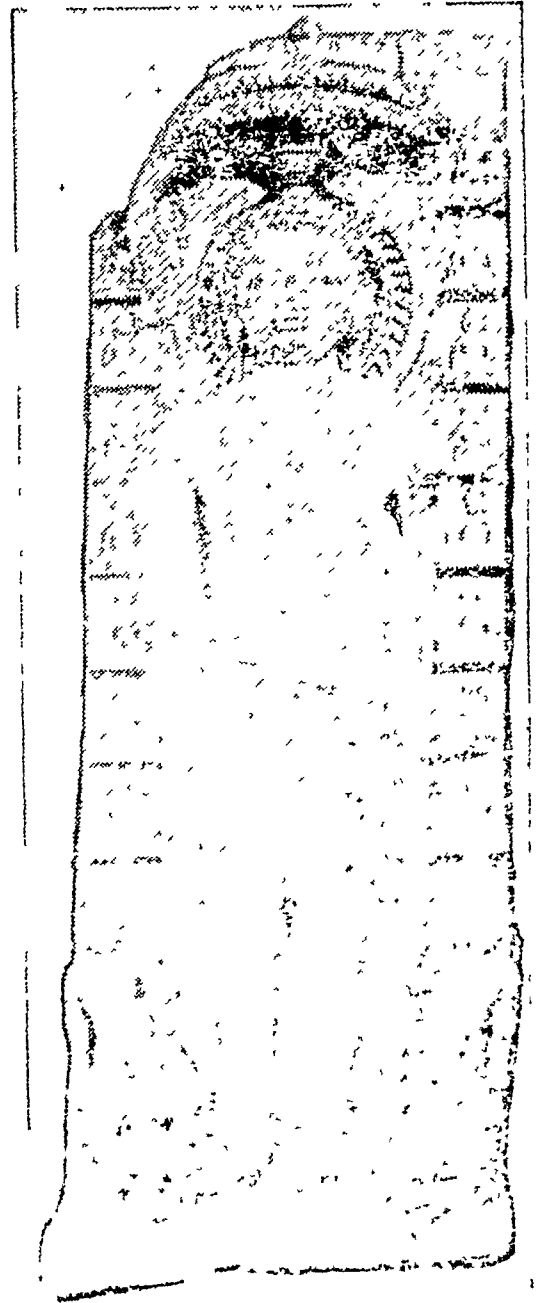
मूलनायक ऋषभनाथ के अंकन मे युत चौबीसी। समय–12 वी ई० प्राप्ति स्थान–अज्ञात

लेखयुत व लेख रहित दोनों ही प्रकार की हैं। इनमे आयागपट्ट, कुषाणकालीन पद्मासीन, व खडगस्थ अर्हन्त प्रतिमाए, सर्वतोभद्र या चौमुखी और चौबीसी भी हैं।

सग्रह के कुल सात चौबीसी या चतुर्विशत्पट्ट हैं। य दूबकुण्ड ग्वालियर, मथुरा, बहराइच श्रावस्ती आदि स्थानो से प्राप्त हुए हैं। कुई के प्राप्तस्थल सग्रहालय पजी पर अज्ञात लिखे है यहा पर प्रतिमा के प्रस्तर आकृतियो की बनावट, वेषभूषा अलकरणादि के आधार पर अनुमान किये जा सकते हैं।

यहा एक रोचक चतुर्विशत्पट्ट का वर्णन प्रस्तुत है। यहा चौबीसी मे मूलनायक ऋषभनाथ प्रतीत होते हैं क्योकि घुघराले वालो के साथ कधे परकेशो की लट भी दोनों ओर बनाई गई हैं।[1]

मुख के पीछे प्रभामडल बना है जिसे कमल से सजाया गया है। गजमुख का भी अलकरण है। दायी ओर फलदायिक कैवल्यवृक्ष की पत्ती ऊपर से आई है। बायी ओर की टट गई है। प्रभामण्डल के ऊपर छत्रदल इस पर त्रिछत्र तथा उसी पर देवदुदुभिवादक उसके पास ही हवा में उडते विद्याधर थे। बाई ओर का सुरक्षित व दायी तरफ का टूट चुका है। बायी ओर दो खडे अर्हन्त थे पुन तीन बैठे। इसी के नीचे आठ ध्यानस्थ तीर्थंकर बैठे हैं। दूसरी ओर सात तीर्थंकर बैठे हैं। नीचे चँवरधारी एक जैसी वेशभूषा में है। केवल बायीं ओर के चवरधारी के श्रीवत्स नही है बायी ओर सर्पफणो नीचे पद्मावती चतुर्भुजी बनी है बायी ओर नरकेवाहना चक्रेश्वरी यद्यपि इनके हाथ टूटे हैं केवल नीचे का दाया हाथ अभयमुद्रा मे शेष है। मूलनायक के दोनो चरण दोनो हाथ खडित हैं। बक्ष पर श्रीवत्स सकरपारे के आकार का तथा चिबुक वृत्ताकार रेखाओ द्वारा दर्शाये गये हैं। कान लम्बे तथा दोनो भहुए धनुपाकार है टूटी किञ्चितमात्र ही टूटी है।

मूलनायक ऋषभनाथ के कमर पर अधोवस्त्रकी धारिया सामने गाठ व नीचे उसका छोर सुहावने ढग से लहराता हुआ शिल्पकार ने बनाया है। जो इस तथ्य को उद्घाटित करता है कि यह कला रत्न, जैन सस्कृति के श्वेताम्बर आम्नाय से सम्बद्ध है। यहा पर चूकि चरण चौकी खडित है। यदि कोई लेख रहा भी होगा तो विनष्ट हो चुका है। इस प्रतिमा मे मूर्तिकार ने सफलता पूर्वक भगवान ऋषभ के हृदय में स्थित प्रशान्तभाव को चेहरे पर प्रगटित किया है। यह कलाकृति पीत धवल प्रस्तर (1 12 × 37 × 30से मी०) पर गढी गई है और इसकी सग्रह सख्या जे-९४९ है। इस कलारत्न को कहा से लाया गया इस विषय में अनुमान ही लगाया जा सकता है क्योकि सग्रहालय पजी मे प्राप्ति स्थान अज्ञात लिखा है। किन्तु प्रतिमाशैली, प्रस्तरादि के आधार पर यह कलाकृति मध्यप्रदेश या राजस्थान के आसपास की होनी चाहिए। यह 12 वी शती का कलारत्न है।

1– यू तो कधे पर लटे ऋषभ का चिन्ह कुषाण काल से था किन्तु सेरोन जिला ललितपुर के शान्तिनाथ मन्दिर में मध्यकालीन लटयुत मूर्ति की चौकी पर कलश, मछली व हिरण बने देखे गये हैं। जिससे यह स्पष्ट होता है कि 12 वी शती में जब लाछन स्थिर हो चुके थे तो लटे मात्र ऋषभ का परिचय चिन्ह नहीं रह गये थे।

साधना पूर्ण जीवन
समाधि पूर्ण मरण

['कल्याण' मासिक में से- संकलनकर्ता—पू. आ. श्रीमद् विजय भुवन भानु सूरजी महाराज के शिष्य
पू. मुनि श्री भुवन सुन्दर विजयजी]

इस संसार में जन्म होना यह विकृति है, किन्तु जिसका जन्म है उसकी मौत होना यह स्वाभाविक है। फिर भी जन्म पाकर जो मनुष्य श्री अरिहंत परमात्मा की आज्ञा से जीवन जीता है और अन्त समय पर समाधि से मृत्यु का आलिंगन कर लेता है, उसकी मौत भी एक सामान्य घटना नही है किन्तु उत्तमकोटि का आदर्श है और सराहनीय है।

मानव देह की प्राप्ति यह कर्मकृत जन्म है, व्यावहारिक शिक्षण, धन प्राप्ति का पुरुषार्थ, शादी, पुत्र प्राप्ति आदि भी सब कर्म पराधीन अवस्थाएं है और आयुष्य की समाप्ति के समय रोते रोते, हाय... हाय... करते करते मर जाना यह भी कर्म पराधीन मौत है। ऐसा कर्म-पराधीन जन्म-जीवन और मौत पाने वाले जीव अनंत है। प्रत्येक भव में ये तीनो घटनाएं उसके जीवन में घटती है, किन्तु फूटी कौडी भी उसका मूल्य नही है। मूल्य तो उस जन्म–जीवन और मृत्यु का है जो नया जन्म–जीवन और मौत का अन्त कर दे। जैन शासन मे उनका ही जन्म–जीवन मौत प्रशस्य है जिन्होने नये जन्म–जीवन और मौत का अंत किया हो या अंत के लिये सम्यग पुरुषार्थ किया हो।

जैन शासन में गिनती है उसी जन्म--जीवन और मौत की जो पुरुषार्थ से प्राप्त हुए हो। वह जन्म है संयम की उपलब्धि, वह जीवन है संयम की साधना और वह मृत्यु है समाधि मरण। ऐसा प्रशस्त जन्म–जीवन और मृत्यु की उपलब्धि करने वाले हैं—

प्रशान्तमूर्ति, वैराग्यवारिधि, सच्चारित्र-चूडामणि, विनीत विनयी, नमस्कार महामंत्र के परमाराधक, स्याद्वादसंगी, मैत्र्यादि भावों से भावित, अध्यात्मयोगी, सौम्याकृति, प्रभावशाली व्यक्तित्वधारी, योगनिष्ठ परमपूज्य परोपकारी पन्यासजी श्रीभद्रंकरविजयजीमहाराज साहेब।

आपने वीतराग भगवान के शासन में जन्म पाकर सयम ग्रहण किया और उन पचास साल तक लगातार अष्ट प्रवचनमाता, गुरु भक्ति. शास्त्र स्वाध्याय, ध्यान–योग, संघ वात्सल्य, जीवों पर मैत्री–करुणा आदि एवं निर्मल चारित्र की

चर्या का अप्रमत्त भाव से पालन करके वि स २०३६ वैशाख सुदी १० के दिन पाटण मे परम पूज्य गुरुदेव व्याख्यान वाचस्पति आचार्यदेव श्रीमद् विजय रामचन्द्र सूरीश्वरजी महाराज के पुण्य मुख से नमस्कार महामन्त्र का श्रवण करते करते, सब जीवों के साथ क्षमापना करते करते इस नाशवत देह का त्याग कर दिया।

जहाँ पचासरा पार्श्वनाथजी, शामणीया पार्श्वनाथजी, धीगडमल्ला पार्श्वनाथजी आदि प्राचीन मन्दिर जैन शासन की समृद्धि का परिचय दे रहे हैं और १२५ स भी अधिक जहाँ भव्य जिनालयें है ऐसी पुण्य भूमि पाटण मे आपका जन्म सवत् १९५९ मागसर सुद पचमी के शुभ दिन पर हुआ था। हालाँकि आपका नाम भगवानदास रक्खा था किन्तु बाल्यकाल मे 'भगु' के प्यारे नाम से स्वजन वग आपको पुकारते थे। बाल्यवय मे १ साल की उम्र से ही धार्मिक और श्रद्धावत माता-पिताजी सस्कार हेतु आपको जिनपूजा करने के लिये ले जाते थे। आपके गृह मे भी छोटासा लकडीका कलामय गृहमदिर था। आपको बाल्यकाल से ही धम के अच्छे सस्कार मिले थे।

१२ साल की उम्र तक मे आपने पचप्रतिक्रमण तथा योगशास्त्र के पाच प्रकाश कण्ठस्थ कर लिये थे। तथा १५ साल की उम्र मे आनदघन जी के पदों, यशोविजयजी महाराज कृततीन चोवीशी, गवासो-डेडसो तथा साडी तीन स गाथा का स्तवन, वीतराग स्तोत्रादि भी कठस्थ कर लिये थे। आध्यात्मिक भजन-पदो में बाल्यकाल से ही आपको भारी दिलचस्पी थी।

तीव्र बुद्धिशाली आप १५ साल की उम्र मे ही मेटिक परीक्षा मे बम्बई युनिवर्सिटि से उत्तीर्ण हो गये थे। इग्लिश भाषा पर आपका अच्छा प्रभुत्व था। बम्बई मे पिताजी के एरन्डे के व्यापार मे आप लगे। कुटुबीजनो के अत्याग्रहवश आपको १६ साल की उम्र में ही शादी करने के लिये मजबूर होना पडा।

व्यापार मे आपने न्याय-नीति का पालन किया और अप्रमाणिकता तथा असत्य से दूर ही रहे। गृहस्थावस्था से ही आप धमप्रिय, आचार सपन्न और परम श्रद्धावन्त श्रावक थे। इसके फलस्वरूप आपने वीर स १९८७ कार्तिक वदी ३ के दिन २८ साल की उम्र मे सकलागम रहस्यवेदी पूज्य आचाय महाराज श्री दानसूरीश्वर जी के पवित्र करकमल स चारित्र पाया।

साधुपन मे विनय, वैयावच्च के साथ साथ आपकी ज्ञान पिपासा और बढी। षड्दशन का आपने तलस्पर्शी अध्ययन किया। शणानासार, योगबिन्दु, ध्यानशतक, उपमिति, आदि शास्त्रो का आपने सुन्दर अध्ययन किया। ध्यान और योग के विषय मे आपको भारी दिलचस्पी रही। इस विषय मे आपने पूज्य हेमचन्द्राचाय महाराज, पूज्य यशोविजय उपाध्याय जी तथा पूज्य हरिभद्रसूरि महाराज के ग्रन्थो का गहरा अध्ययन किया, उस पर विशद चिन्तन-मनन किया।

आपकी काया अष्टप्रवचन माता से हमेशा पलती रही। आप अरिहत के ध्यान स्वरूप हररोज ३०० लोगस्सक काउसग्ग-ध्यान करते थे। आपकी वाणी हमेशा हित-मित पथ्य और सत्य बोलती रही। जरूरत पडने पर अल्प ही बोलते थे। उसी वक्त ही कह देने जैसी बात १५ दिन के बाद बताने की धीरता गंभीरता आप रखते थे। इस महान गुण से आपने आपके साधक जीवन मे अत्यत सफलता पायी और अन्य के जीवन मे भी भारी सहानुभूति पैदा की, जिसके कारण बहुत से लोगो पर आपका अवर्णनीय प्रभाव पडा और वे धम सन्मुख बने।

आपका मन महामंत्र की आराधना से, करेमिभंते सूत्र के भावों से तथा मैत्र्यादि भाव की साधना से भरा हुआ था। आपका व्यवहार स्याद्वाद की दृष्टि से पूर्णत: व्याप्त था। आप नास्तिकों की बातें भी ध्यान से सुनते थे, केवल खंडन हेतु नहीं किन्तु मंडनार्थे आप उनकी बातों का तात्विक रूप से खंडन करते थे, और वह सुन कर नास्तिक भी श्रद्धावन्त बन जाते थे। नाजुक देह यष्टि होने पर भी आपने आभ्यंतर तप के साथ साथ बाह्य तप की साधना में भी कमी नही रखी थी। फलत: आपने वर्धमान आयबिल तप की बावन ओलीयां पूर्ण की थी।

चिंतन-मनन और अनुप्रेक्षा स्वाध्याय के फलस्वरूप आपने सुन्दर प्रकार के साहित्य का सर्जन किया है। जिसमें नमस्कार मिमांसा, नमस्कार दोहन, देवदर्शन, अनुप्रेक्षा, जैनमार्ग की पीछान आदि सोलह जितने विशाल ग्रन्थों की रचना करके आपने जैन शासन की महान सेवा की है। नमस्कार महामंत्र तथा करेमिभते सूत्र आपके चिंतन के मुख्य अग रहे है। और ये दोनों सूत्रों पर आपने अद्भुत प्रकाश डाला है।

साहित्य सर्जन में धर्म, सर्वज्ञ, आत्मा, स्याद्वाद, कर्म, भक्ति, मुक्ति, श्रद्धा, अहिंसा, प्रार्थना, मैत्री, वात्सल्य आदि अनेक विषयों पर मार्मिक विवेचन करके अनुभव और अभ्यास का अर्क (अेसेन्स) निचोड कर दिया है।

उनपचास साल का सुविशुद्ध दीर्घ संयम पर्याय पूर्ण करके, अनेक जीवो पर उपकार करके और ३०-३० मुमुक्षुओं को चारित्र प्रदान कर वि. संवत् २०३६ वैशाख सुद १४ को पाक्षिक प्रतिक्रमण में विधिपूर्वक सर्व जीवों के साथ क्षमापना करते करते, पापों की आलोचना करते करते, मैत्र्यादि भावों की भावना में मस्त बनकर नमस्कार महामंत्र के स्मरण करते करते आप जैसे महापुरुष ने इस पार्थिव देह को त्याग दिया और समाधि मरण साध लिया।

आपका स्वर्गवास उसी पाटण की पुण्य भूमि पर हुआ जहाँ आपने जीवन की पहली साँसे ली थी। हजारों भक्तो को निराधार छोड़ कर आपने देवलोक की ओर प्रयाण किया। अन्तिम दो-तीन साल से विशेष रूप से नादुरस्त तबियत होने पर भी आपने रोग परीषह को सहर्ष बरदास्त किया था।

शास्त्र कहते हैं-मरणं मंगलं यस्य, सफलं तस्य जीवनम।

वीतरागदेव और जैन शासन पाकर आपने अपना जीवन धन्यातिधन्य बना लिया। आपका यह सदा के लिये उपदेश था कि—"मुमुक्षु साधक को नमस्कार महामंत्र का जप, आयंबिलका तप और ब्रह्मचर्य का खप करना आवश्यक है।"

आप हमसे अलविदा हो गये हैं किन्तु यह सुनिश्चित है-गुणों की सुवास से हमारे दिल को सदा बहलाते रहेंगे। पँचम काल में महान पुण्योदय से हमें आपकी भेट हुई थी। देवलोक से हमारे पर कृपाभिवृष्टि सदा बरसाते रहना। ऐसे धन्यातिधन्यतम परमपवित्र पन्यास श्री भद्रंकर विजयजी महाराज को कोटिश: वंदनावली।

दिगम्बर जैन विद्वान सुन्दरसिंह लमैचू रचित नूतन एवं अज्ञात 'सिन्दूर प्रकर की भाषा वचनिका'

● महोपाध्याय विनय सागरजी म०

श्रमण भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित श्रमण धर्म साधनामय जीवन का पर्यायवाची रहा है। श्रमण आत्म सिद्धि की साधना करता हुआ सर्वदा परकल्याण की कामना की ओर भी प्रयत्नशील रहा है। यही कारण है कि श्रमण विचरण करता हुआ जहाँ भी जाता है वहाँ के निवासियों से सम्पर्क करता है और जनभाषा मे ही उन्हे उपदेश प्रदान कर सम्यक् धर्म की ओर प्रेरित भी करता है। जन-जीवन को आकृष्ट करने के लिए सिद्धान्त, दर्शन और न्याय शास्त्र गर्भित उपदेशो की उपेक्षा जन-जीवन से सम्बन्धित नीतिपरक सुभाषित और कथानकों का माध्यम ही सर्वश्रेष्ठ रहता है। इसी को ध्यान मे रखते हुए जैनाचार्यों ने धर्मोपदेश प्रधान अनेक छोटे-बडे शताधिक ग्रन्थो की रचनायें की हैं।

धर्मोपदेश प्रधान सुभाषितमय लघु काव्यो मे श्वेताम्बर समाज मे युगप्रवर जिनवल्लभसूरि रचित धर्मशिक्षा प्रकारण और सोमप्रभसूरि रचित सूक्तिमुक्तावली प्रसिद्ध नाम सिन्दूर प्रकर श्रेष्ठतम काव्य हैं। इन दोनो काव्यो मे भी प्रचार प्रसार की दृष्टि से सिन्दूर प्रकर का स्थान सर्वोपरि है। आज भी श्वेताम्बर समाज मे पठित श्रमण-श्रमणी वृन्द मे सौ मे से सत्तर व्यक्तियो को सिन्दूर प्रकर कण्ठस्थ होगा। इसी से इस ग्रन्थ की महत्ता और व्यापकता स्पष्ट है।

ग्रन्थ का नाम

विविध छन्दो मे गुम्फित एक सौ पद्यों की इस रचना का नाम ग्रन्थकार ने सूक्तिमुक्तावली प्रदान किया है किन्तु इस ग्रन्थ का प्रारम्भ "सिन्दूरप्रकर स्तप" शब्द से होने के कारण भक्तामर, कल्याणमन्दिर, भावारिवारण और कर्पूरप्रकर की तरह इसका नाम भी जन-मानस मे सिन्दूर प्रकर ही सदा के लिए स्थायी हो गया। वैसे सोमप्रभसूरि रचित शतक काव्य होने के कारण इसका 'सोमशतक' नाम भी प्राप्त होता है।

ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय

इस काव्य मे जीवन मे आचरणीय 21 विषयो का प्रतिपादन बहुत ही मार्मिक शैली मे 21 प्रक्रमों-अधिकारो मे किया गया है। प्रस्तुत 21 प्रक्रमो मे देव, गुरु धर्म की प्रभुसत्ता बतलाते हुए इनकी आराधना पद्धति, तज्जनित फल और सांसारिक पदार्थों की नश्वरता से उत्पन्न दुःख तथा उनके निवारण के हेतुओं का विवेचन बहुत ही सरल शब्दो मे किया गया है। 21 प्रक्रम अधिकार निम्न लिखित हैं —

भक्तिं तीर्थंकरे गुरौ जिनमते संघ च हिंसानृत-
स्तेयाब्रह्म परिग्रहाद्युपरमं क्रोधाद्यरीणां जयम्।
सौजन्य गुणिसग-मिन्द्रियदम दानंतपो भावना
वैराग्यं च विधीहि निर्वृतिपदे यद्यस्ति गन्तुं मनः॥

1. तीर्थंकर भक्ति, 2. गुरु भक्ति, 3. जिनमत भक्ति, 4. संघ भक्ति, 5. अहिंसा, 6. सत्य, 7. अस्तेय, 8. ब्रह्मचर्य, 9. अपरिग्रह, 10. क्रोध जय, 11. मानजय, 12. माया जय, 13. लोभ जय, 14. सुजन सग, 15. गुणि संग, 16. इन्द्रिय दमन, 17. लक्ष्मी चांचल्य, 18. दान, 19. तप, 19. भावना और 21. वैराग्य।

इस काव्य में पद्य 1–7 में मंगला चरण, ग्रन्थ-प्रयोजन, मानव भव की दुर्लभता आदि उपदेश, पद्य 8 में 21 अधिकारों का संकेत, पद्य 9–92 तक में 21 प्रक्रमों का 4–4 पद्यों में वर्णन और पद्य 93 से 100 तक उपसंहारात्मक उपदेश और ग्रन्थकार की प्रशस्ति है।

काव्यकार सोमप्रभ,

प्रस्तुत काव्य के सौवें पद्य में ग्रन्थकार ने लिखा है कि अजित देवाचार्य का पौत्र शिष्य और विजयसिंहाचार्य का शिष्य सोमप्रभ ने (मैंने) इस सूक्तिमुक्तावली की रचना की है।

सोमप्रभसूरि रचित अन्य ग्रन्थों की प्रशस्ति के अनुसार ये वृहद्गच्छीय सर्वदेवसूरि की परम्परा में हुए है। वंशवृक्ष इस प्रकार है :—

सर्वदेवसूरि
|
यशोभद्रसूरि
|
मुनिचन्द्रसूरि
|
मानदेवसूरि
|
अजित देवसूरि
|
विजयसिह सूरि
|
सोमप्रभसूरि

जैन साहित्य जो संक्षिप्त इतिहास पृ० 282–283 में लिखा है :—

"ये गृहस्थावस्था में प्राग्वाट (पोरवाल) जाति के वैश्य-वणिक थे। पिता का नाम सर्वदेव तथा पितामह का नाम जिनदेव था। जिनदेव किसी राजा का मन्त्री था और वह अपने समय का बहुत ही प्रतिष्ठित पुरुष था। सोमप्रभ ने कुमारावस्था में ही जैन दीक्षा लेकर, तीव्रबुद्धि के प्रभाव से समस्त शास्त्रों का तलस्पर्शी अभ्यास कर आचार्य पदवी प्राप्त की थी। उनकी तर्कशास्त्र मे अद्भुत पटुता, काव्य-विषय मे अधिक गतिशीलता और व्याख्यान देने में अत्यधिक कुशलता थी।"

सोमप्रभसूरि निर्मित चार कृतियां प्राप्त है :—

1. सुमतिनाथचरित्र—प्राकृत, श्लोक सं. 9621, चालुक्य कुमारपाल के समय में रचित।

2. शतार्थ काव्य— संस्कृत, स्वोपज्ञ टीका, 1 पद्य के सौ अर्थ, रचनाकाल 1233-1235 के मध्य।

3. कुमारपाल प्रतिबोध—प्राकृत रचना सं. 1241 पाटन।

4. सूक्तिमुक्तावली —संस्कृत।

रचना-प्रशस्तियों से स्पष्ट है कि आचार्य का काल विक्रम की तेरहवी शताब्दी है और कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य तथा चालुक्य नृपति कुमारपाल का समकालीन है।

टीकाएं

इस प्रसिद्ध ग्रन्थ पर अनेक जैन-विद्वानो ने सस्कृत भाषा मे टीका ग्रन्थो की रचना की है। उनमे से प्रमुख प्रमुख व्याख्याकारो के नाम निम्नाकित हैं —

1 चारित्रवधन	र. स 1505
2 धर्मचन्द्रगणि	र स 1513
3 हर्षकीर्तिसूरि	17वी शती
4 जिनतिलकसूरि	16वीं शती
5 गुणकीर्तिसूरि	
6 विमलसूरि	
7 भावचारित्र	
8 राजशील	16 वी शती

वतमान समय में गुजराती और हिन्दी अनुवाद तो अनेको विद्वानो के प्रकाशित हुए है।

दिगम्बर जैन विद्वान रचित 'वचनिका'

जैन परम्परा, श्वेताम्बर और दिगम्बर के नाम से दो परम्परा मे विभक्त हैं। कुछ चार्चिक एव विवादास्पद प्रश्नों को छोडकर, दोनो परम्परायें एक समान विचारधारा को लेकर चलती रही हैं। सैद्धान्तिक, दार्शनिक, न्यायिक, साहित्यिक, धर्मप्रकृति, औपदेशिक आदि से सम्बन्धित समग्र साहित्य और मान्यतायें दोनो एक समान हैं। ऐसा होते हुए भी दोनो परम्पराओ के मनीषियो ने एक-दूसरे के साहित्य को 'अस्पृश्यसा' मानते हुए, स्वय को सर्वदा से 'अछूता' अलग सा रखा है। ऐसी अवस्था में एक-दूसरे के साहित्य का पठन-पाठन, मनन और उस पर लेखिनी चलाने का तो प्रश्न ही नही उटता। फिर भी यह लिखते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता है कि इस द्वैविध्य और अलगाव के रहते हुए भी कुछ विद्वानो ने अपनी सहिष्णुता को माध्यम बनाकर दूसरी परम्परा के ग्रन्थो पर अपनी लेखिनी उठाई है और एक दूसरे को सामीप्य प्रदान करने का प्रयत्न किया है।

इस वर्ष गवेषणा करते हुए राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, क्षेत्रीय कार्यालय जयपुर के सग्रहालय में ये अनूठे ग्रन्थ मेरे देखने मे आये हैं। दोनो के ग्रन्थाक हैं—1861 और 1880, प्रथम ग्रन्थ नेमिचन्द्र भाण्डागारिक रचित षष्टिशतक प्रकरण पर भागचन्द की वचनिका और दूसरा ग्रन्थ सोमप्रभसूरि रचित सिन्दूर प्रकर पर सुन्दरसिंह की वचनिका। दोनो ग्रन्थो के मूल रचनाकार श्वेताम्बर विद्वान हैं और वचनिका कार दिगम्बर विद्वान्। षष्टिशतक प्रकरण पर मैं पृथक् से लेख लिख रहा हूँ। अत इस लेख मे उसका उल्लेख न कर, केवल सिन्दूर प्रकर की वचनिका का ही परिचय दे रहा हूँ।

जयपुर सग्रहालय की प्रति का परिचय इस प्रकार है,—

ग्रन्थ सख्या 1880, माप 32 2×11 2 सी एम, पत्र सख्या 41, पक्ति सख्या 9, अक्षर सख्या 44, लेखन काल अनुमानित 20वी शती का पूर्वार्द्ध। अक्षर स्फीत एव सुवाच्य हैं। वचनिका का आद्यन्त लेखन इस प्रकार है —

अथ सूक्तमुक्तावली सस्कृत ग्रन्थ की छद वद देशभाषामय वचनिका लिखीये है। तहा प्रथम ही पच परमेष्टी कू नमस्कार करिये है।

छन्द छप्पे

करत घाति गण घाति प्राप्त गुण चारि महोत्तम,
वसु गुण मडित सिद्ध बुद्ध गुण अमल जगोत्तम।
पचाचार विचार त आचरण करावै,
पढै पढावै सुगम पथ ध्यायक दरसावे ।

वसु बीस मूल गुण आदरे, मुक्ति पंथ साधन सदा।
स्याव्दाद न्याय मंडित गिरा, मन वचन तन नमि करि मुदा ।। ।।

दोहा

गौतम गणकों आदि दे, महाकवि गणराय।
श्रुतस्कन्धधारी नमौ, बुद्धि देहु अधिकाय ।।2।।
मगल होने के अर्थि, देव धर्म गुरु पार।
करों वचनिका ग्रन्थ की, भविजन की सुखदाय ।।3।।

छन्द छप्पै

वदन घ्राण द्रग रसन करण कर क्रम क्रम करिया।
गज करि रस शशि वाण धरा रस इक नय धरिया।
असित वर्ण तन वदन सात विष निर्गम इति तैं।
अमृत एक मुख स्रवै जगत जनम रहिन तिनि तैं।

रम एक प्रभु मो उर वसो,
विन्घ्र हरो मंगल करो।
वास चरण भव भव मिलो,
लभवसागरतरो ।।4।।

ऐसे मगल करि अब श्री सूक्तमुक्तावली ग्रन्थ का छन्दोबन्द वचनिका प्रारम्भ करिये है। तहां प्रथम ही स्वामी सोमदेव संस्कृत ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के अर्थि श्री पार्श्वनाथ स्वामी के चरण को नमस्कार पूर्वक, श्रोतानि को आशीर्वाद पूर्वक मंगलाचरण का काव्य कहें है।

काव्यं शर्दूल विक्रीडित छन्द

मिन्दूरप्रकरस्तपःकरिशिरः क्रोडे काषायटवी–
दावार्चिर्निचयः प्रबोधदिवस. प्रारम्भमूर्योदयः।
मुक्ति श्रीकुचकुम्भ कुक्ड्डुम रसः श्रेयस्तरोपल्लव–
प्रोल्लासक्रमयोर्नखद्युतिभरः पार्श्वप्रभो पातु वः ।।

कवित्त

सो तिलन पर गजराज सीस सिन्दूर छवि,
बोध दिवस आरम्भ करन कारन उद्योत रवि।
मंगल तरु पल्लव कषाभ कंतार हुतासन,
बहुगुण रत्न निधान मुक्ति कमला कमलासन।
इहि विधि अनेक उपमा सहित,
अरन वरन सन्ताप हर।
जिनराज पाय मुख जोति भर,
नमल वनारासि जोहि कर ।। ।।

पार्श्व प्रभु जे है तिनि के जे चरणार विन्द तिनि के जे नखतिनि को जो द्युति कहि ए कान्ति ताका जो 'भर' कहिए समूह सो 'वः' युष्माक कहिए तुम जे है तिनि कों 'पातु' कहिए रक्षा करों। ए तो आचार्य के आशीर्वाद पूर्ण के वचन है। अब भगवान के चरणनि के नखनि की कान्ति के समूह को उत्प्रेक्षालकार रूप उपमा कहे है। तहां प्रथम हों, 'तपः करिशिरः क्रोडे सिन्दूर प्रकरः' कहिए कीया जो भगवान ने उग्र तपचरण सोई भया हाथी ताका जो शिर ताका जो क्रोड मध्यभाग ता विषै सिन्दूर प्रकर कहिए सिन्दूर का समूह ही है। बहुरि कैसे है? 'कषायटवी दावार्चिर्निचया 'कहिए कपाय रूप जो वनि ताके भस्म करिवे कों दावाग्नि की ज्वाला समान है। बहुनि कैसे है? 'प्रबोधदिवस.' कहिये प्रबोध ज्ञान सोई भया दिन ताके आरम्भ करने की सूर्य का उदय है। बहुरि कैसे है? 'मुक्तिस्त्रिकुचकुम्भ कुक्ड्डुमरसः' मुक्ति सोई भई स्त्री ताके जे कुचकुम्भ तिनि के केशरिका रस है। मानों। बहुरि कैसे ह? 'श्रेयस्तरोपल्लवप्रोल्लासः' कल्याण रूप वृक्ष की कूपल का उभम है मानो।

भावार्थ

भगवान श्री पार्श्वनाथ के चरणारविन्द के नखनि की कांति की समूह सो तुम्हारी रक्षा करो ।। ।।

(प्रत्येक प्रकम–द्वार–अधिकार के अन्त की पुष्पिका इस प्रकार है :—)

इति श्री सोमदेव आचार्य कृत सूक्तमुक्तावली नाम संस्कृत ग्रन्थ की वचनिका की विर्षे प्रथम द्वार समाप्त भया ॥ ॥

(अन्तिमांश)

मालिनी छन्द

अभजदजितदेवाचार्यपट्टादयाद्रि-

द्युमणि-विजयसिंहाचार्य-पादारविन्द्र ।
मधुकर समता यस्तेन सोमप्रभेण,

व्यरचि मुनिपराज्ञा-सक्तिमुक्तावलीयम् ॥

अर्थ

जो अजित देव नाम आचार्य का पाठरूप जो उदयाचल पर्वत ता विषै सूर्य समान एसा विजय सिंह नाम आचार्य के चरण कमल विर्षे भ्रमर सामनपना धारण करता भया सो सोमप्रभ जो है तानैं या मुनिन की परम आज्ञा रूप सूक्त मुक्तावली नाम ग्रन्थ जो है सो रचित भया, सो जयवंत होउ ॥

अथ वचनिका करणे वाला अन्तिम मंगल करे है –

छप्पै

दोष आठ दश रहित सहित गुण द्रव्य वेद वर,
वसु गुण मण्डित सिद्ध सूरि पट् तीन भाव धर ।
पंच वीस गुण मूल साधै शिव काजैं,

जिनवाणी जिन चैत्य गृह,
जिन मारग उर में धरो ।
मंगल उत्तिम शरण रा,
विघ्न हरो-मंगल वरो-॥ ॥

सवैया

जालों नभ माहि चन्द्र सूरज प्रकाश करें
भूतल तैं गंगा सिन्धु नदी वहै जवलों ।
कुलगिरि सहित जा लों सुरगिरि प्रगट रहै
क्षितितल सर्व जिनराज वृष धवलों ।
जवलों शिव ज्ञान अचल सिद्ध मांहि राजत है
जवलों प्रसंग सिन्धु भूतल में मवलों ।
ऐसी विधि धारि ग्रन्थ सूक्त मुक्तावली के देश-
भाषामय वचनिका जयवन्त रहो तवलों ॥2॥

दोहा

सुखी होहु राजा प्रजा, सुखी होहु सब लोग ।
सुखी होहु चउसंघ फुनि, धर्मवृद्ध करि भोग ॥3॥

अब बुद्ध भाषा के,
लिखों भावावधि जोग ।
देश भदावर नगर शुभ,
नाम अटेर मनोग ॥ 4 ॥

तहा श्रावक बहुते वसे,
जाति लमैचू जानि ।
अमरसिंह तसु तीन सुत,
विचलो सुन्दर मानि ॥ 5 ॥

कम विहायो गति उदे
अटू तें निकसे सोय ।
आई वसे मानव विर्षे
इन्द्रावतिपुर जोय ॥ 6 ॥

जहा की सैली देख कें,
हिय मे हर्ष न माय ।
पट् मन्दिर जिनराज के,
व्रप उदयोत लखाय ॥ 7 ॥

ग्रन्थ सूक्त-मुक्तावली,
देखि हियो उमगाय ।
करी वचनिका तास की,
बाल बोध सुखदाय ॥ 8 ॥

ता पीछे पण्डित सही,
धनजीमल इहा आय ।

तिननै बहु प्रेरन करी,
करो बचनिका जाहि ॥ 9 ॥

तब हमने भाषा करी,
अल्प बुद्धि हम जाँनि।
पण्डित मति हंसियों मुझे,
मो परि प्रीति सुठानी ॥ 10 ॥

सवैया 31

सुखद अनूप ग्रन्थ सूक्त मुक्तावली पन्थ
जामें है सुतंत्र ऐसो भाष निरभयो है।
दर्शन शुद्ध होत दूरि दुरबुद्धि होत
बुद्धि रिद्धि वृद्धि होत .... ।
अमत मत जाहि बालकहु बोध पाइ,
पद आप वर्ण लाभ कर्त्ता काडि लयो है ॥
6 4 8
रस युग सराग ससि-
(1846) संवत् सुमासवर,
जेठि कृष्ण दोजिवार, ।
सुरगुरु मानिये।
दिवस सुमाय दोय गये,
गून्थ पूरो होय,
ताहि को अभ्यास करे,
सार्धमि जानिये।
धर्म ही तैं ऋिद्ध हो ते,
वृद्धि होय धर्म ही तैं
धर्म ही तैं सिद्ध होय,
पाहि चित ठानिये।
पढो पढावो याहि,
सुनो सुनावो याहि,
लिखो लिखावो याहि,
धरम भाव आनिये ॥ 12 ॥

दोहा

भई वचनिका गून्थ की
पुरी सरस नवीन।
वक्ता श्रोता सुख लहो,
पढत सुनत चित दीन ॥ 13 ॥

इति श्री सोमदेव आचार्यकृत सूक्तमुक्तावली नाम संस्कृत ग्रन्थ की देशभाषामयं वचनिका विषैं सामान्य प्रक्रम बाईसमां अधिकार पूर्ण भया ॥ 22

इति श्री सिन्दूर प्रक्रम (प्रकर) की वचनिका समाप्ता भया ॥ 1 ॥

वचनिकाकार सुन्दरसिंह

वचनिका की लेखन–प्रशस्ति में वचनिकाकार ने अपना परिचय देते हुए लिखा है :—

भदावर देश में अटेर नामक नगर है। जहां अधिक मात्रा में श्रावकों के घर हैं। इसी नगर में लमेचू जातीय अमरसिंह निवास करते है। उनके तीन पुत्र हैं। जिनमें विचला पुत्र (मैं) सुन्दरसिंह हूँ। देवयोग से मुझे अपना निवास स्थान अटेर छोडकर, मालव-देश में आना पड़ा। यहां मैं इन्द्रावतीपुर (इन्दोर) में आकर रहने लगा। इस इन्दोर नगरी में जिनेश्वरदेव के छह मन्दिर है। यहाँ निवास तरते हुए। मैंने सूक्तिमुक्तावली गन्थ देखा। इस गन्थ को देखकर मेरा हृदय प्रसन्नता से खिल उठा और इस पर वचनिका लिखने का मैंने निर्णय किया। इन्ही दिनों पंडित श्री धनजीमल भी यहां इन्दोर में आकर रहने लगे और उन्होंने भी इस गन्थ पर वचनिका लिखने के लिये मुझे अत्यधिक प्रेरित किया। उन्हीं की सतत प्रेरणा से मैंने (सुन्दरसिंह ने) वि० सं० 1846 ज्येष्ठ कृष्णा 2 गुरुवार के दिन इस वचनिका को पूर्ण किया।

संवतोल्लेख मे रस युग सराग ससि शब्दों का प्रयोग है। प्रतिलिपिकार ने शायद 'नाग' के स्थान पर भ्रम से 'सराग' लिख दिया हो। सराग शब्द

से किसी अ क का बोध नही होता है। अत नाग या 8 अ क का पर्यायवाची शब्द यहा अपेक्षित है।

वचनिका की भाषा हिन्दी है। वचनिका का अवलोकन करने से स्पस्ट है कि सुदरसिंह जैन-शास्त्रो का, छद और साहित्य शास्त्र का भी अच्छा जानकार था।

इस ग्रन्थ मे मूल श्लोक के पश्चात मूलश्लोक का हिन्दी पद्यानुवाद, अर्थ और भावार्थ भी दिया गया है। प्रथम पदय के हिन्दी पदयानुवाद मे 'बनारसी' नाम मिलता है। अत यह निश्चित है कि हिन्दी पदयानुवाद का लेखक प्रसिद्ध विद्वान प० बनारसीदास हैं जिनका समय विक्रम की 18 वीं शदी है। इस प्रति मे 95 वें पद्यो तक का ही पदयानुवाद प्राप्त है। शायद प्रतिलिपिकार शेष के 5 पद्यो का अनुवाद लिखना भूल गया है।

वचनिकाकार ने वचनिका मे अर्थ खण्डान्वय शैली मे विस्तार से किया है। भाषा सरस और सुन्दर है। अर्थ के पश्चात साराश के रूप मे भावाथ दिया है।

सिंदूर प्रकर का कर्त्ता कौन ?

लगातार 9

प्रारम्भ मे ही 'काव्यकार सोमप्रभ' मे प्रतिपादन कर चुका हूँ कि इस काव्य के कर्त्ता वृहद्गच्छीय सोमप्रभसूरि हैं और उनका सत्ताकाल 13वीं शताब्दी है। किन्तु वचनिकाकार ने इसका कर्त्ता स्वामी सोमदेव अथवा आचार्य सोमदेव को माना है और वचनिका की पीठिका (प्रारम्भ) तथा प्रत्येक प्रथम-अधिकार के अत मे इस प्रकार उल्लेख किया है —

'एसे मगल करि अथ श्री सूक्तमुक्तावली
गून्य का छदोबन्द
वचनिका प्रारम्भ करिये हैं।
तहा प्रथम ही स्वामी सोमदेव
सस्कृत गून्य की निर्विघ्न
समाप्ति के अर्थि श्री पार्श्वनाथ
स्वामी के चरण कों
नमस्कार पूवक ।"
मंगलाचरण-पीठिका

— + +

"इति श्री सोमदेव आचार्य कृत
सूक्तमुक्तावली नाम सस्कृत ॥
गून्य की वचनिका विषै
प्रथम वार समाप्त भया ॥

+ +

"इति श्री सोमदेव आचाय कृत
सूक्तमुक्तावली नाम सस्कृत गून्य की
देशभाषामय वचनिका विषै सामान्य प्रथम
बाईसमा अधिकार पूर्ण भया ॥2॥"

+ —

सुदरसिंह ने स्वामी या आचार्य सोमदेव शब्द कहा से ग्रहण किया है इसका समग्र वचनिका मे कही उल्लेख नहीं है। सोमदेव किस परम्परा मे हुए या कौन सी शताब्दी मे हुए, इसका भी कोई सकेत नही है। जब कि इस काव्य के सौवें पद्य मे कर्त्ता ने स्पष्टत अपना नाम सोमप्रभ और दादागुरु अजितदेवाचार्य तथा गुरु विजयसिंहाचाय का उल्लेख किया है। सुदरसिंह ने स्वय ने इस पद्य की वचनिका मे मूल काव्यानुसारी परम्परा को ही सुरक्षित रखा है। अतएव यह मानना असगतिपूर्ण या निराधार न होगा कि, वचनिकाकार ने सोमप्रभ की ही मनोकल्पित नाम सोमदेव दिया है। सुदरसिंह के हृदय मे कुछ भी रहा हो, फिर भी यह मानना होगा कि, वह धर्मभीरु था, क्योंकि मूल काव्य का अर्थ लिखते हुए उसने नाम विपर्यय या अर्थ विपर्यय करने का प्रयत्न नहीं किया और लेखक का नाम सोमप्रभ ही माना। अस्तु

सामान्य जिज्ञासुओं और धर्मप्रेमियो के लिए यह वचनिका पठनीय है और प्रकाशन योग्य है।

— ❁ —

ने ब्रह्मचर्य तणो जणाव्यो नाद जेणे विश्वमां,
एवा प्रभु अरिहंतने पंचांग भावे हुं नमुं ॥

[५] भगवान का महादान—

आवो पधारो इष्टवस्तु पामवा नरनारीओ,
ओ घोषणाथी अर्पता सांवत्सरिक महादानने
ने छेदता दारिद्र सौनुं दानना महाकल्पथी
एवा प्रभु अरिहंतने पंचांग भावे हुं नमुं ॥

[६] दीक्षा कल्याणक—

दीक्षा तणो अभिषेक जेनो योजता इन्द्रो मली,
शिबिका स्वरूप विमानमां विराजता भगवंत श्री,
अशोक पुन्नम तिलक चंपावृक्ष शोभित वन महीं
एवा प्रभु अरिहंतन पंचांग भावे हुं नमुं ॥

[७] आत्मविकास—

पुष्कर कमलना पत्रनी भांति नहि लेपाय जे,
ने जीवनी माफक अप्रतिहत वरगतिए विचरे,
आकाशनी जेम निरालंब गुण थकी जे ओपता,
एवा प्रभु अरिहतने पंचाग भावे हुं नमुं ॥

[८] केवलज्ञान कल्याणक—

जे पूर्ण केवलज्ञान लोकालोकने अजवालतुं,
जेना महा सामर्थ्य केरो पार को नव पामतुं,
ए प्राप्त जेणे चारघाती कर्मने छेदी कर्युं,
एवा प्रभु अरिहंतने पंचांग भावे हुं नमुं ॥

[९] भाव अरिहंत—

जे इजत सोनाने अनुपम रत्नना त्रणगढमहीं
सुवर्णना नवपद्ममां पदकमलने स्थापन करी,
चारे दिशा मुख चार चार सिंहासने जे शोभता,
एवा प्रभु अरिहंतने पंचांग भावे हुं नमुं ॥

[१०] लोकोपकार—

ज्या भव्य जीवोना अविकसित खीलता प्रज्ञाकमल,
भगवतवाणी दिव्यस्पर्शे दूरे थता मिथ्या वमण,
ने देव दानव भव्यमानव झखता जेनु शरण,
एवा प्रभु अरिहतने पचाग भावे हु नमु ॥

[११] तीर्थ स्थापना—

जे धम तीथकर चतुविध सघ सस्थापन करे,
महा तीर्थ सम ए सघने सुर असुर सह वदन करे,
ने सर्व जीवो भूत, प्राणी, सत्त्वनु करुणा धरे,
एवा प्रभु अरिहतने पचाग भावे हु नमु ॥

× + ×

सर्वत्र सवस्य सदा प्रवृत्ति, दु खस्य नाशाय सुखस्य हेतो ।
तथापि दु ख न विनाशमेति, सुख न कस्यापि भजेत् स्थिरत्वम् ॥
[श्री हृदयप्रदीपषट्त्रिंशिका]

दु,खो का नाश करने के लिये और सुख को पाने के लिए सारे जगत मे, सब जीवो की हमेशा की यह प्रवृत्ति होने पर भी दु ख का अभीतक नाश नही हुआ और सुख किसी को स्थिर नहीं हुआ ।

इसका कारण यह है कि जीव धन–दौलत स्त्री परिवार को सुख का साधन मानता है, वास्तव में ये सब दु ख रूप है, और दु ख नाश करने वाला धर्म पर तो उसकी नाराजगी है । फिर दु ख जाये कहा से और सुख आये कहा से ?

× + ×

अनेऽमूका भूयासुस्ते येषा त्वसि मत्सर ।
शुभोदर्काय वैकल्यमपि पापेसु कमसु ॥
[कलिकाल सवज्ञ पू हेम चन्द्राचाय म वीतराग स्तोत्र में]

→ यथास्थितवादी सवज्ञ वीतराग जैसे महान पुरुषो पर जिसको द्वेष है वो बधिर और गू गे हो वो ही अच्छा है । क्योकि पाप कार्यों मे तो ऐसी यूनता ही भविष्य के लिये लाभदायक है ।

× + ×

आसन्न काल भव सिद्धि, यस्स जीवस्स लक्खाण इणमो ।
विसय सुहेसु न रज्जइ, सव्वत्थामेसु उज्जमइ ॥
[उपदेशमाला, पू धमदास गीण म०]

—शीघ्र मोक्षगामी जीव के दो लक्षण है :

(१) विषय सुखों में आसक्त नही और (2) पूरी ताकत से विविध धर्मानुष्ठान में उद्यम करना। ये दो के अभाव में जीव को अनन्त संसारी जानना।

× × ×

भवजलनदिमध्यान्नाथ निस्तार्य कार्यः,
शिवनगर कुटुम्बी निर्गुणोऽपि त्वयाऽहम्।
नहि गुणमगुणं वा संश्रितानां महान्तो,
निरुपमकरुणार्द्राः सर्वथा चिन्तयन्ति ॥

[परमार्हत् कुमारपाल महाराजा. जिन स्तवनमें]

— निर्गुण हूँ फिर भी हे नाथ ! शिवनगर के सम्बन्ध से मै आपका परिवार का सदस्य हूं, इसीलिये संसार रूपी नदी से मेरा निस्तार करना, क्योंकि निरुपम करुणा से भरे हुए महापुरुषों आश्रितों के गुण या अवगुण नहीं देखते।

× × ×

तत्त्वश्रद्धान पूतात्मान रमते भवोदधौ।

[पू. सिद्धर्षिगणि म. उपमिति भवप्रपञ्चाकथा में]

—जिनेश्वर देव के बतायें हुए तत्वों पर श्रद्धा करने वाली पवित्र आत्मा दुःख रूप संसार में आनन्द से नहीं रहेगी।

× × ×

दुःखद्विट् सुखलिप्सुः मोहान्धत्वाददृष्ट गुण दोषः।
यां यां करोति चेष्टां तया तया दुःख मादत्ते ॥

[१० पूर्वधर पू. उमास्वाति म. प्रशमरति में]

—दुःख से भागने वाला और सुख के पीछे दौडने वाला जीव मोहान्ध होने के कारण गुण-दोष को नही जानता हुआ सुख के लिये ज्यों ज्यों चेष्टा करता है उसमे दुःख ही दुःख पाता है॥

× × ×

इहपरलोयविरुद्धं न सेवए दाण-विणय-सीलड्ढो

[पू शान्तिसूरि म. धर्मरत्न प्रकरण में]

—जिसको लोकप्रिय बनना है उसको इहलोक विरुद्ध जुआ चारी शराब और परलोक विरुद्ध परस्त्री गमन, मांसाहार, शिकारादि को सर्वथा छोड़ना चाहिए।

तथा दान यानि त्याग—प्रधान पद का मोह छोड़ना चाहिए, विनय यानि सबके साथ नम्रतापूर्वक व्यवहार करना चाहिए और सदाचारी रहना चाहिए। यानि त्याग, विनय और सदाचार ये तीन गुणयुक्त ही नेता बनने के लिये योग्य है।

× × ×

ए जिन प्रतिमा जिनवर सरखी, पूजो त्रिविधे तुमे प्राणी।
जिन प्रतिमा में सन्देह न राखो, वाचकयश की वाणी॥
[तार्किक शिरोमणी पू यशोविजयजी म०]

—जिनेश्वरदेव, गणधर, केवलि और विशिष्ट ज्ञानियो के वियोग मे इस विषम काल में भाविक जीवो के लिय दो ही आलम्बन हैं, जिन बिम्ब तथा जिनागम। इसीलिये एक महान आलम्बन जिन बिम्ब में सन्देह नहीं रखना।

× × ×

यावद्देहमिदं गदैर्न मृदितम्, नो वा जराजर्जरम्।
यावत्त्वक्षकदम्बकं स्वविषयज्ञानावगाह क्षमम्।
यावच्चायुरभङ्गुरं निजहिते तावद् बुधैर्यत्यताम्।
कासारे स्फुटिते जले प्रचलिते, पालि कथं बध्यते॥

(पू विनयविजयजी म० शान्तसुधारस शास्त्र मे)

—हे मनुष्य! जब तक तुम्हारा यह शरीर कैन्सर टी बी, लकवा आदि रोग से घिरा हुआ नहीं है, जब तक वृद्धावस्था मे तेरी काया जर्जरित नहीं हुई है, जब तक तुम्हारी इन्द्रिया स्वविषय का ज्ञान करने मे समर्थ है तथा जब तक क्षण भंगुर आयुष्य है इतने मे तुम धर्म की प्राप्ति में शुभ प्रयत्न करलो, वरना तालाब की पाली टूट जाने पर और पानी जाने पर पाल नहीं बंध सकती।

यानि जब तक शरीर स्वस्थ हैं इन्द्रिया कार्यक्षम है और आयुष्य है तब तक ही धर्म करने का अवसर है फिर ये अवसर गया समझो।

ध्यान योग की साधना

पं. दुर्गादत्त शर्मा
बी. ए. साहित्य रत्न, ज्योतिषाचार्य

योग शब्द के विभिन्न अर्थ होते हैं। मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना। कुछ लोग मात्र शारीरिक आसनो को, कुछ चमत्कार शक्ति, सम्मोहन या मैस्मैरिज्म को और कुछ मात्र श्वास प्रक्रिया के अभ्यास को योग कह देते है।

संस्कृत में इसकी व्युत्पत्ति "युज" धातु से मानी गई है। इसका अर्थ एक जोड़, एकत्रीकरण या मिलना होता है। बौद्ध मत में समाधि का अर्थ योग है। जैन दर्शन में मन, वचन और कार्य के व्यापार को भी योग कहते हैं। आचार्य हरिभद्र जी के-मोक्खेण जोयणाओ जोगो-और उपाध्याय यशोविजयजी के-मौक्षेण योजनादेव योगो ह्यत्र निरुच्यते-के अनुसार वे समस्त साधन जो आत्मा को शुद्ध, कर्ममल का नाश और मोक्ष से संयोग करते है योग कहाते हैं।

याज्ञवल्क्य के अनुसार-"संयोगो योग यत्युक्तो जीवात्म परमात्मनोः"-जीवात्मा-परमात्मा का मेल ही योग है। श्री कृष्ण ने गीता मे-समत्व योग उच्यते-समत्व को योग कहा है। महर्षि पातंजल-योगश्चित वृत्ति निरोधः- चित्त की वृत्तियों के रोकने को योग कहते है। सूक्ष्मदृष्टि से इन सभी विचारों में एक रूपता है।

योगवीज उपनिषद में कहा है कि ज्ञान निष्ठ और विरक्त होते हुए भी, धर्मज्ञ और जितेन्द्रिय होते हुए भी, देवता भी योग के बिना मोक्ष लाभ नही कर सकते।

स्कंद पुराण के-आत्मज्ञानेन मुक्तिः स्यत्ताच्च योगादृते नहि-के अनुसार मुक्ति आत्मज्ञान से होती है और आत्मज्ञान बिना योगाभ्यास के नहीं होता। आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिये मात्र योग ही एक सहज सरल उपाय है। वास्तव में तो योग मनुष्य जीवन का विज्ञान और कला है जो जीवन की समस्त शक्तियो और क्षमताओं का विकास कर सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करता है।

The Mysterious kundalini by Dr. Vasant G Rele के अनुसार योग उस विद्या को कहते है जो मनुष्य के अंतःकरण को इस योग्य बनादे कि वह उच्चस्फुरणों के अनुकूल होता हुआ संसार में हमारे चारों और जो असीम सुज्ञान व्यापार हो रहे हैं उनको बिना किसी के जाने, ग्रहण करे और पचावे।

पाश्चात्य विचारक Zimmerजिमर के अनुसार—

"The aim of Yoga is to cross the boundaries of individualized consciousness,

योग का उद्देश्य व्यक्तिगत चेतना की सीमा से ऊपर उठ जाना होता है।

इस प्रकार योगी अनुग्रह और निग्रह की शक्ति अर्जित कर अपने लिये नही दूसरो के लिये जीवित रहता है। योगी सत्य का, समस्त ब्रह्माण्ड के रहस्य का, स्वरूप का प्रत्यक्ष दर्शन करता है। उसके ज्ञान का आधार उसका अपना अनुभव होता है। किसी भी धर्म, सम्प्रदाय, वर्ण और देश का योगी हो-एक ही बात जिसे वेद-अहं ब्रह्मास्मि, सूफी मतानुसार अनलहक और बाइबिल—

"I and my father are one I am the Alfa and the Omega "

कहता है, अनुभव करेगा। योग मार्ग का राही अपनी चेतना के उच्च आध्यात्मिक स्तर पर उठ कर सत्य से अतीन्द्रिय साक्षात्कार करता है। चेतना व सत्ता के निम्न स्तर पर से इस बात का अनुमान या कल्पना करना नितान्त अनुचित और असभव है कि उच्च स्तर पर क्या सभव और क्या असभव है।

महर्षि पातञ्जल के अनुसार योग के-यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयोष्टागानि यह आठ अग हैं। इन्ही मे ध्यान एक है। तत्र प्रत्येयक तानताध्यानम-उस ध्येय विषय मे वृत्ति का एक समान बना रहना ध्यान है।

योग मे ध्यान के भेद अनेक प्रकार के हैं किन्तु लक्ष्य और उद्देश्य एक है। सत्य तत्व परमात्मा एक है। निगुण-सगुण या निराकार-साकार अथवा वेद-अभेद सभी रूप हैं। साधक अपने वातावरण, अपनी रुचि, श्रद्धा-विश्वास, भावना और अधिकार के अनुसार ध्यान साधन की प्रक्रिया अपनाता है।

वासना और कामना का प्रवाह जाग्रत, स्वप्न, और सुषुप्ति तीनो अवस्थाओं में व्यक्ति के हृदय पर होता रहता है। चित्त प्रकृत अवस्था को प्राप्त करने का प्रयास करता है किन्तु इन्द्रियों के साथ साथ इस बहिर्मुखी प्रवृत्ति से निवृत्त भी करना है। यह, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का अभ्यास करने से चित्त की एकाग्रता, ज्ञान फिर मुक्ति निश्चित है। किन्तु यहा यह उल्लेखनीय है कि यम-नियम इसकी आधारभूत सीढी है। यदि यह सीढी ही कमजोर है तो निश्चित रूप मे आगे बढना खतरे से खाली नही है।

यो तो प्रत्येक कार्य के सफल सपादन के लिये चित्त की समस्त वृत्तियों का सयोजन आवश्यक होता है। वह भी ध्यान योग का एक अग है। ध्यान की महिमा महान है। श्रीमद् भागवत मे कहा है कि जो पुरुष विषयों का ध्यान करता है उसका चित्त विषयो मे फस जाता है और जो मेरा ध्यान करता है वह मुझ में लीन हो जाता है। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि।

गीता मे-श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाध्यानं विशिष्यते-अभ्यास से ज्ञान और ज्ञान मे भी ध्यान विशेष श्रेयस्कर कहा है। योग बीज-उपनिषद मे कहा है-अनेक शत सख्या भिस्तर्क व्याकरणादिभि। पतिता शास्त्र जालेषु प्रज्ञयाते विमोहिता।

सैकडो तर्क शास्त्र तथा व्याकरणादि पढ कर मनुष्य शास्त्र जाल मे फस कर केवल विमोहित हो जाते हैं। वास्तव में प्रकृत ज्ञान योगाभ्यास के बिना उत्पन्न नहीं होता। महर्षि पातजल के अनुसार-तदा दृष्टु स्वरूपे वस्थानम् अर्थात् योग साधन के द्वारा उस समय द्रष्टा की अपने रूप मे स्थिति हो जाती है।

ध्यान से सब कुछ, यहा तक कि भगवान की प्राप्ति भी होती हैं। साधक अपनी आस्था,

और श्रद्धा–विश्वास के अनुसार जिस रूप में भी भगवान को देखना चाहे, अनुभव कर सकता है। क्योंकि सत्य एक है।

ध्यान योग का अभ्यास अनेक प्रकार से किया जाता है किन्तु सभी आतरिक प्रक्रियाओं में वाह्य रूप से यह आवश्यक है कि पवित्र वातावरण में एकान्त स्थान पर ब्राह्म मुहूर्त में नरम ऊनी या कुशा के आसन पर सिद्धासन या पद्मासन लगा, शाम्भवी मुद्रा में अथवा प्रारंभ में नासिकाग्र पर दृष्टि जमा कर, शरीर, रीढ़ की हड्डी, मस्तक और गले को सीधा रख कर निश्चित नियमित रूप से नित्यप्रति अभ्याम करे। प्रारंभ मे मन के नियत्रित होने तक ईष्ट मत्र का जप भी मन ही मन किया जा सकता है। यथामिमतध्यानाद वा–जो ध्यान अच्छा लगे उसके द्वारा अभ्यास करे। गीता के छठें अध्याय में भी श्री कृष्ण ने कहा है—

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिन कुशोत्तरम्॥
तत्रैका मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रिय विक्रय:।
उपविश्यासने युंजयाद्योग मात्मविशुद्धये॥
समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचतं स्थिर:।
सम्प्रैक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चामवलोकयन्॥

शुद्ध भूमि में कोई वस्त्र रख कर अपने आसन को न अत्यंत ऊंचा और न अत्यत नीचा स्थिर करके प्रतिष्ठापित करे। उस आसन पर वैठ कर तथा मन को एकाग्र करके, चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में करके अन्तः करण की शुद्धि के लिये योगाभ्यास करें। शरीर, सिर और ग्रीवा को समान और निश्चल होकर अपने नासिकाग्र को देखे।

प्रशान्तात्मा विगत्त भीर्ब्रह्म चारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चिचो युक्त आसीत मत्परः॥

और तब ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर, निर्भय होकर शान्त अन्तः करण से सावधान होकर मन को संयम कर, मुझ में चित्त को लगा कर वैठे।

ध्यान स्थूल रूप से चित्त की असाधारण एकाग्रता का दूसरा नाम है। ध्यान के परिपुष्ट होने के उपरांत ही समाधि की ओर बढ़ा जा सकता है। इस ध्यान की अथवा एकाग्रता की प्रक्रिया में जिन नाड़ी संस्थानों को नियत्रित किया जाता है अथवा जिन पर स्वयंमेव ही दवाव पड़ता है उन स्थानो पर शक्ति नियंत्रण के कारण तद्विपयक प्रवृत्ति एवं ज्ञान में अभिवृद्धि होती जाती है। यही प्रमुख नाड़ी संस्थान षट्चक्र के नाम से जाने जाते है।

और इस योग साधना के आनद का वारापार नही होता। वह आनंद, सुख इतना महान होता है कि संसार के समस्त आनन्द उसकी तुलना में कही ठहर नही पाते। परम आनन्द का लाभ होता है। यह वह स्थिति है जिसमे सदा रहने वाला योगी बड़े से बड़े संकट से भी नही डिगता।

गीता में कहा है—

यंलब्ध्वा चापरं लाभ मन्यते नाधिक ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुः खेन गुरुणापि विचाल्यते।

परमेश्वर की प्राप्ति रूप जिस लाभ को प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता है और भगवत्प्राप्ति रूप की अवस्था में योगी वड़े भारी दुःख से भी चलायमान नहीं होता है। ऐसा योगी पुरुष सासरिक दुखो को भी भगवान का अनुग्रह मान कर चलता है। परमान्द की प्राप्ति ही मानव का मुख्य उद्देश्य, चरम लक्ष्य अथवा अन्तिम ध्येय है।

नियमित ध्यान साधना करते करते मुलधार में स्थित पराशक्ति–कुंडलिनि–क्रमशः पट्चक्रो (नाडी संस्थानो पर सचरण कर) का भेदन करते हुए सहस्त्रार में पहुंच जाती है और तव साधक समस्त संदेहो से परे होकर स्वय परशिव का रूप वन जाता है। वह भव–वधनों से मुक्त हो जाता है।

——

जैन समाज के जीवनमरण का प्रश्न ।

महत्वपूर्ण चिन्तन

श्री केसरीचन्द सिंघी

भारत मे जैन समाज एक सम्पन्न व शान्ति प्रिय समाज है । इसको अन्य लोग कायरता मानते हैं-इसमें कुछ सच्चाई भी है ।

व्यापार व्यवसाय की वजह से इसे लूटपाट-मारपीट सघर्ष शक्ति प्रदर्शन से नफरत रही-व्यवहार सुख सुविधा शान्ति-वैभव प्रदर्शन इसे पसन्द है-इसमे इसे अपमान सहने पडते हैं। अत्याचार को चुप रहकर अनहोनी मानकर मन को समझा लेता है ।

व्यवसायिक लाभ-सुखपूर्वक ठाठ बाठ से रहने की चाह, धर्म भीरुता आदि की वजह से यह समाज अन्याय, अत्याचार सहने में भला मानता है ।

सच तो यह है कि हमने भगवान महावीर की अहिंसा को समझा ही नहीं । भगवान ने वीरत्व को बुरा नहीं कहा हम यह समझ बैठे कि हम में ओज वीरता का होना पाप है इस से तो हम जैन धर्म का अपमान कर रहे हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि हम भीरू होकर चुपचाप प्रहार सहने के आदि हो गये हैं और दूसरो को अपने जैसा बनाने मे धर्म मानते हैं ।

आचार्य तुलसी पर रायपुर-चूरू के हमने हमने सहे, मुनि रोहित विजय जी पर सिरोही के पास मारपीट, उपाश्रय भवन व सामान जलाना बरदास्त किया, कहीं कहीं मौन जलूस निकालकर चुप हो गये । हमें सुखोपयोग-व्यवसाय से फुरसत कहा ? तो फिर मनमाड भयकर काण्ड घटा जिसमे औरतो के तो जेवर लूटे गये—शामियाना जलाया गया बलात्कार हुये और ८-10 जिन्दा औरतो को आग में फेंका गया देखते देखते यह घटित हुआ जहा आनन्द ऋषिजी के अक्षय तृतीया के दिन व्याख्यान मे ५000 श्रावक श्राविकाए थे-२५-३० बदमाशो ने लूट पाट की । इस काण्ड को यह कहकर समाप्त कर दिया कि लोगो मे रोष पूर्ण विरोध से स्वय मुख्य मन्त्री अ तुले घटनास्थल पर आ गये ।

ये अत्याचार आपके पूज्यनीय गुरुओ पर हुये हैं । मन्दिर तोडे गये हैं और आगरा की दादाबाडी की जमीन पर जबरन्स्ती हरिजन बस गये हैं । आप चुपचाप कडुवे घूट पीकर बरदास्त कर रहे हैं । आपके भाई बहिन साधर्मी पर जुल्म होता है उस में आप को क्या लेना देना है ?

आपकी इस कायरता-स्वार्थता की वजह से सरकार भी आपको न्याय प्रदान नहीं करती और आपके जैन राज्य पदाधिकारी-मन्त्री सब धर्म निरपेक्षता का उदाहरण पेश कर रहे हैं ।

यदि इस दशा का चिन्तन नहीं किया तो वह दिन दूर नहीं कि आपके सामने आपकी प्रिय वस्तुए छीनली जावेगी आप निसहाय कर्म दोष देकर सतोष करेंगे और आपकी भावी पीढी अग्रेजी शिक्षा, आपके भीरुता के सस्कार से जैन धर्म से दूर हो जावेगी ।

"भगवान महावीर के दर्शन करते ही दूध की धारा बही"

आचार्य श्री विजय इन्द्रदिन्नसुरीश्वरजी म०

शासन पति भगवान महावीर स्वामी के पूर्व भव की माता तीर्थंकर के दर्शन आनन्द से उनका दिल हर्षोल्लास से भर गया।

ब्राह्मणकुण्ड ग्राम में ऋषभदत्त ब्राह्मण ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद मे पारंगत थे। सभी वेद शास्त्रों में अठारहपुराण मे पारगंत थे। देवानन्दा ब्राह्मणी उनकी पत्नी थी।

प्रभु महावीर उनकी कोंख में 82 दिन रहे, और 83 वे दिन हरिणीगमीशी देव द्वारा संहंकार करके त्रिशला माता के गर्भ मे परिवर्तन किया गया। यह अधिकार हर पर्यूषण मे पर्वो के दिन में चतुर्विध संघ के समक्ष सुनाया जाता है। यह घटना प्रसिद्ध है।

परन्तु 82 वे दिन तक माता देवानन्दा की कुक्षी में भगवान ने निवास किया यह घटना आश्चर्यजनक है। प्रसंग ऐसा है, श्रमण भगवान विचरते-विचरते ब्राह्मणकुण्ड नगर के उद्यान मे पधारे, ऐसे समाचार सब नगर जनों तक पहुँच गये, ऋषभदत्त ब्राह्मण ने देवानन्दा ब्राह्मणी के पास पहुँच कर कहा—हे देवाण प्रिय अही तीर्थ की आदि करना, सर्वज्ञ ने सर्वदर्शी श्रमण भगवान महावीर सुखपूर्वक विहार करते हुए बहुतू नामक चैत्य में योग्य स्थान पर पधारे। भगवान की मधुर वाणी सुनने के लिए देवों का इन्द्र भवनपति व्यन्तर ज्योतिषि वैमाणिक चार प्रकार के देव, चार प्रकार की देवियां, चतुर्विध संघ वैसे बारह प्रसदा में श्रमण भगवान सर्वज्ञ केवल ज्ञानी सबके बीच में सुशोभित आकाश मण्डल मे रहा हुआ, समोसरण में रत्न के, सोने के, और चांदी के सिहांसन पर चतुर्यमुख विराजमान हुए।

सब नगर जनों को विधिवत वन्दन करके देशनार्थ सुनने के लिए समोशरण में विराजमान होकर 35 गुण से युक्त देशना सुनने में तल्लिन हो गये। एकाग्रचित्त से सब प्रिय मधुर वाणी सुनने मे डूब गये। उसी समय ऋषभदत्त ब्राह्मण सारे परिवार के साथ भगवान के दर्शनार्थ समोसरण में आकार विधिवत सबने भाव भरे हृदय से वन्दन किया।'

देवनन्दा ब्राह्मणी भगवान महावीर के सामने एकाग्रदृष्टि से लगातार देख रही थीं, और स्नेह का पारा चढ़ गया। वह उसके स्तनों मे से फव्वारे की तरह दूध की धारा निकली। चक्षु आनन्द से भीग गये। वेग की धारा विकसित हो गयी। शरीर के रोयें से खडे हो गये। भगवान के सामने दृष्टि

रखकर नही है, उक्त घटना देखकर के गौतम प्रभु ने भगवान महावीर ने प्रश्न किया —

"हे प्रभु ये ब्राह्मणी आपके सामने एक नजर लगाकर क्यो देख रही है और फव्वारे की भांति दूध की धारा क्यो बह रही है।"

प्रत्युत्तर से प्रभु ने कहा —

हे गौतम ये देवानन्दा ब्राह्मणी मेरी माता है, व मैं उनका पुत्र हू। पुत्र स्नेह के कारण ही पुत्र स्नेह का पारा चढा, और फव्वारे की भांति स्तनो से दूध की धारा निकली है।

उसके बाद प्रभु ने प्रमदा को धर्म उपदेश दिया ऋषभदत्त ब्राह्मण और देवनन्दा ब्रह्मणी प्रभु के पास जाकर के दोनो पति, पत्नि ने कहा—हे प्रभु जन्म-मरण मे यह लोक चारो तरफ स प्रज्जवलित हो रहा है। और यह ससार अत्यन्त दुखो मे भरा हुआ है। ऐसा कह करके आत्मा को कल्याण करने वाले प्रभु के पास दीक्षा अगीकार की और सामायिकादि 11 अगों का ऋषभदत्त ब्राह्मण ने स्थवीरा के पास अध्ययन किया। देवानन्दा ब्रह्मणी चन्दना आर्या के पास सामायीकादि 11 अगो का अध्ययन किया।

भगवती सूत्र का स्तक 9, उदेशक 33 मे ये पाठ है।

"तएण सा देवानदा अज्जा, अज्जचदणाए अज्जाए अतिय सामाइय माइयाइ एक्कारस अ गाई अहिज्जइ"

उपरोक्त घटना मे यह पता चलता है कि साध्वी को भी ग्यारह अग तक पढने का अधिकार है। यह भगवती सूत्र से सिद्ध होता है।

इसी तरह ज्वाती श्रमण भगवान महावीर के दामाद देवागनी जैसी 8 कन्याओ को त्याग करके करोडो सोनैया व राजगद्दी का त्याग करके 500 पुरुषो के साथ प्रभु वीर परमात्मा के पास दीक्षा अगीकार की। ऋषभदत ब्राह्मण की तरह सयम अगीकार किया। सामायिकादि 11 अगो का अध्ययन किया।

चतुर्थ भक्त छठ, अठम, मास, अर्धमास, रूप विचित्र तप कर्मो से आत्मा को भावित किया। वह उनकी पत्नी भी चन्दाआर्या साध्वी के पास दीक्षा अगीकार की। चन्दना के पास सामायिकादि 11 अगो का अध्ययन किया। यह भी भगवती सूत्र के अधिकार मे आया है। उसमे सिद्ध होता है कि पुरुष की तरह नारियो को भी अध्ययन करने का अधिकार आगमो के आधार पर ही दिया गया है। नारियो के अध्ययन से समाज का उद्धार हो सकता है। और अपने घर मे सस्कारी पढी लिखी माताओ से उच्चतम अपने सतानो मे सस्कार डालने का कर्त्तव्य माताए अदा कर सकती है। उसमे कोई सदेह नही है।

—●—

अपरिग्रह—इस व्रत का पालन करने मे कामनाएँ नष्ट हो जाती है। इसके अनुसार किसी भी प्रकार के धन–दौलत की इच्छा नही करनी चाहिए। इसका पालन करने वाले साधु को किसी भी वस्तु के लिए आसक्ति नही होती।

❀ वैराग्य के पद ❀

[१] जग में न तेरा कोई—

- जगमें न तेरा कोई, नर देख हूं निश्चे जोई जगमें …
  सुत मात तात अरु नारी, सब स्वारथ के हितकारी,
  विन स्वारथ शत्रु सोई… जगमें [१]
- तुं फिरत महामद माता, मूरख विषय संग राता,
  निज अंग की सुध बुध खोई…. जगमें [२]
- घट ज्ञान कला नवि जाकुं, पर निज मानत है ताकुं,
  आखिर पछतावा होई … जगमें [३]
- नवि अनुपम नरभव हारो, निज शुद्ध स्वरूप निहारो,
  अंतर ममता भक्त धोई….जगमें [४]
- प्रभु चिदानंदकी वाणी, तुं धार निश्चे जग प्राणी,
  जिम सफल होत भव दोई….जगमें … [५]

[२] अवसर बेर बेर नहिं आवे—

卐

- बेर बेर नहि आवे, रे अवसर बेर बेर नहिं आवे,
  ज्युं जाणे त्युं करले भलाई, जनम जनम सुख पावे….रे अवसर [१]
- तन धन जोवन सब ही झूठे, प्राण पलक में जावे… रे अवसर [२]
- तनछूटे धन कौन काम को, काहे कुं कृपण कहावे….रे अवसर [३]
- जाके दिल में साच बसत है, ताकुं झूठ न भावे… रे अवसर [४]
- आनंद धन प्रभु,चलत पंथ में, सिमर सिमर गुण गावे … रे अवसर [५]

[३] जगत है स्वारथ का साथी—

- जगत है स्वार्थ का साथी, समझले कौन है अपना,
  ये काया काच का कुंभा, नाहक तुं देखके फूलता,
  पलक में फूट जावेगा, पत्ता ज्युं डाल से गिरता जगत … [1]
- मनुष्य की ऐसी जिंदगानी, अभी तुं चेत अभिमानी,
  जीवन का क्या भरोसा है, करी के धर्म की करणी जगत [2]
- खजाना माल ने मंदिर, क्यु कहेता मेरा मेरा तुं,
  इहां सब छोड़ जाना है, न आवे साथ अब तेरा जगत….[3]

- कुटुम्ब परिवार सुत दारा, सुपन सम देख जग सारा,
  निकल जब हंस जावेगा, उसी दिन है सभी न्यारा… जगत….[4[
- तरे संसार सागर से, जपे जो नाम जिनवर को,
  कहे स्वांति यही प्राणी, हटावे कर्म जंजीर को… जगत….[5]

—०—०—

लक्ष्मी पुण्य से या पाप से

श्री प्रकाश चन्द्र छाजेड

आप लोगो की यह धारणा है कि लक्ष्मी पुण्य से मिलती है। आपकी इसमें क्या राय है ?

मेरे विचार से लक्ष्मी का आना पुण्य की बात नहीं है। वह तो पाप के उदय से भी आती है और पुण्य के उदय से भी आती है।

कल्पना कीजिए एक आदमी कहीं जा रहा है। जाते-जाते उसे रास्ते में मोहरो की थैली मिल गई। अनायास ही वह मिल गई और उसे उठा ली। तो वह पाप के उदय से मिली या पुण्य के उदय से मिली ?

वह आदमी उस थैली तो उठाकर घर ले गया और मोहरों का इस्तेमाल करना शुरू किया। फिर जब जाच हुई तो पकडा गया और जेल खाने गया। मानना होगा कि वह थैली पाप के उदय से मिली और जेलखाने जाना और वहा कष्ट पाना, उसी पाप के उदय का फल है।

एक डाकू डाका डालता है और लोगो की लक्ष्मी लूट लेता है। उसे जो सम्पत्ति मिलती है, वह पाप के उदय से या पुण्य के उदय से ? क्या उस लूट या छीना-झपटी के धन को पुण्य से प्राप्त लक्ष्मी कहा जा सकता है ? कभी नहीं, तीन काल मे भी नही।

तात्पय है कि इस विषय मे बहुत गलत फहमिया होती हैं। हमें निरपेक्ष भाव से, मध्यस्थ भाव से शान्ति पूर्वक सोचना चाहिए। ठगी और चोरी न करके न्याय युक्त वृत्ति से जो लक्ष्मी आती है, वही पुण्य के उदय से आती है और लक्ष्मी नीति और धर्म के काय मे व्यय होती है।

इतिहास बतलाता है कि दिन मे एक व्यक्ति राजगद्दी पर बैठा और रात में कत्ल कर दिया गया। तो कत्ल कर दिया जाना पाप का उदय है और उसका कारण राजगद्दी मिलना है। अतएव उसे पाप के उदय से राजगद्दी मिली जो उसके कत्ल का निमित्त बनी। □

❋ चित्र दिग्दर्शन ❋

श्री कोसेलाव-सम्मेतशिखरजी महातीर्थ छःरी पालित चतुर्विध संघ का जयपुर में शुभागमन-दि० ४ जनवरी, १६८१

(१)

पू० पन्यास श्री जिनप्रभविजयजी म० सा० एवं संघपति शा० श्री सरेमलजी त्रिलोकचन्दजी जैन का श्री आत्मानन्द सभा भवन में शुभागमन।

(१) पन्यासप्रवर एवं संघपतिजी जिन मंदिर मे दर्शन करते हुए।
(२) पन्यासजी एवं अन्य मुनिगण स्वागत समारोह में मंगल आशीर्वाद प्रदान करते हुए।
(३) संघ के साथ पधारी हुई साध्वीवृन्द एवं श्राविका मण्डल में से कुछेक।
(४ श्री आत्मानन्द सभा भवन मे संघपतिजी, उनके परिवारजन, जयपुर श्रीसंघ के अध्यक्ष एवं अन्य सदस्यो के साथ।

---

(२)

नगर प्रवेश जुलूस की विहंगम दृश्यावली

---

(३)

संघपति शा० श्री सरेमलजी त्रिलोकचन्दजी जैन, कोसेलाव का अभिनन्दन

(१) श्री हीराचन्दजी चौधरी, अध्यक्ष, श्री जैन श्वे० तपागच्छ संघ, जयपुर संघपतिजी को तिलक कर अभिनन्दन करते हुए। तत्पश्चात् संघपतिजी को चूंदडी का साफा पहिनाया गया।
(२) शा० श्री सरेमलजी त्रिलोकचन्दजी जैन स्वागत के लिए आभार व्यक्त करते हुए।
(३) श्री किस्तूरमलजी शाह, भू० अध्यक्ष, श्री जैन श्वे० तपागच्छ संघ, जयपुर संघपतिजी को मान-पत्र भेंट करते हुए।
(४) श्री कपिलभाई के शाह, उपाध्यक्ष, श्री जैन श्वे० तपागच्छ संघ, जयपुर संघपतिजी को गलीचा भेंट करते हुए।

(४)

संघपतिजी के परि-जनो का अभिनन्दन

(१) श्रीमती जीवनकुमारी, धर्मपत्नि श्री हीराचन्दजी चोधरी, अध्यक्ष तपागच्छ सघ, जयपुर सघपतिजी की पुत्रवधु श्रीमती विमला वहिन, धर्मपत्नि श्री अम्बालालजी को सघ की ओर से साडी भेंट करते हुए। श्रीमती पुष्पावहिन कपिलभाई शाह हाथ में थाली लिए हुए हैं।

(२) श्रीमती जीवनकुमारी, धमपत्नि श्री हीराचन्दजी चोधरी, सघपतिजी की धर्मपत्नि श्रीमती देवी वहिन का अभिनन्दन करते हुए।

(३) श्रीमती बसन्त कवरबाई शाह, धर्मपत्नि श्री किस्तूरमलजी शाह भू० अध्यक्ष, तपागच्छ सघ, जयपुर सघपतिजी की द्वितीय पुत्रवधु श्रीमती मधुवाला वहिन धमपत्नि श्री किरणभाई का अभिनन्दन करते हुए।

---

(५)

स्वागत समारोह का विहगम दृश्य

श्री आत्मानन्द सभा भवन मे आयोजित स्वागत समारोह के अवसर पर उपस्थित विशाल जन समुदाय के साथ बैठे हुए स्थानीय विभिन्न सघो के पदाधिकारी।

---

(६)

सामूहिक क्षमापना दिवस समारोह

दिनाक 16-9-80

(१) सभा मे विराजित तपागच्छ के पू० पन्यास श्री पदमविजयजी म सा, तेरापथी मुनि श्री जसकरणजी एव खरतरगच्छ की साध्वी श्री मनोहर श्रीजी म० सा० आदि आदि।

(२) श्री हीराचन्दजी चौधरी, अध्यक्ष, तपागच्छ सघ, जयपुर अतिथियो का स्वागत करते हुए। श्रीमान गुमानमलजी सा० चोरडिया सघ मत्री, श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक जयपुर सघ जिन्होने सभा की अध्यक्षता की, एव न्याय मूर्ति श्री गुमानमलजी सा० लोढा सामने बैठे हैं।

(३) राजस्थान उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री गुमानमलजी सा० लोढा मुख्य अतिथि के रूप में सभा को सम्बोधित करते हुए।

(४) सभा में उपस्थित जन समूह विभिन्न सघों के पदाधिकारियों सहित।
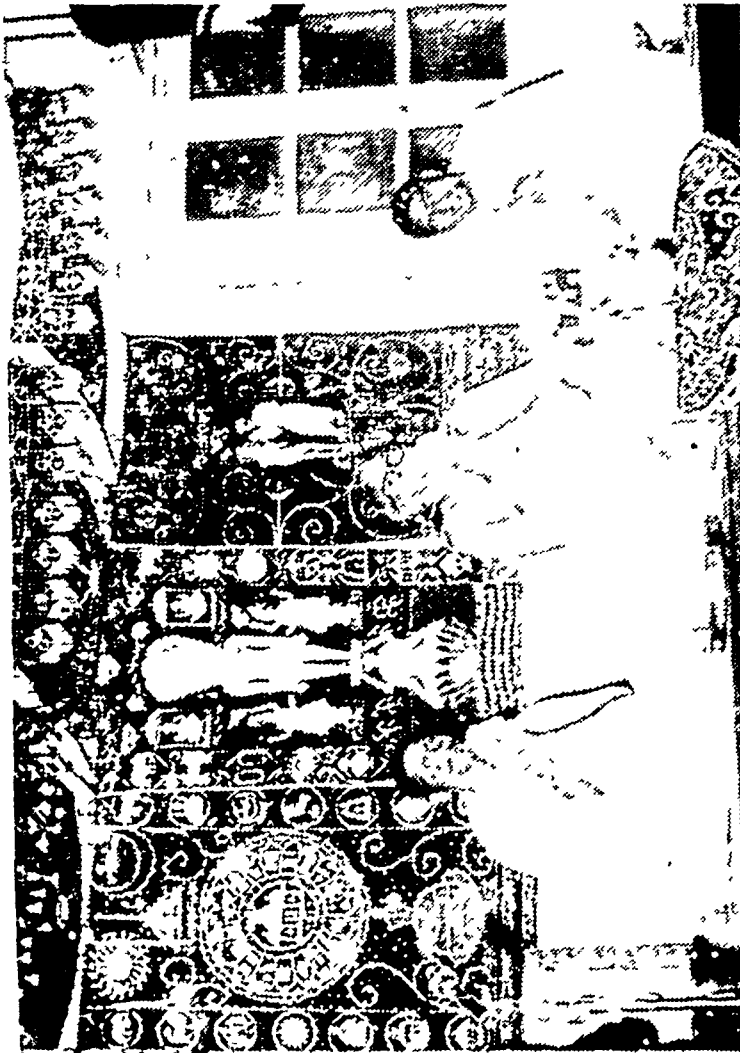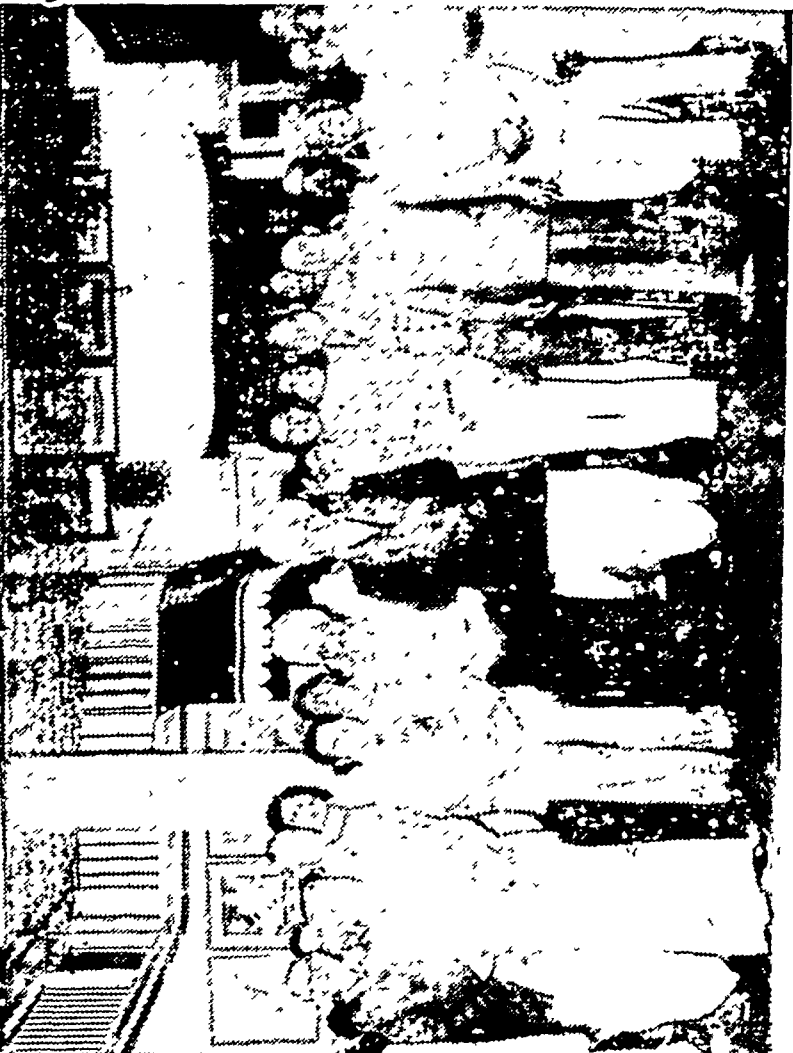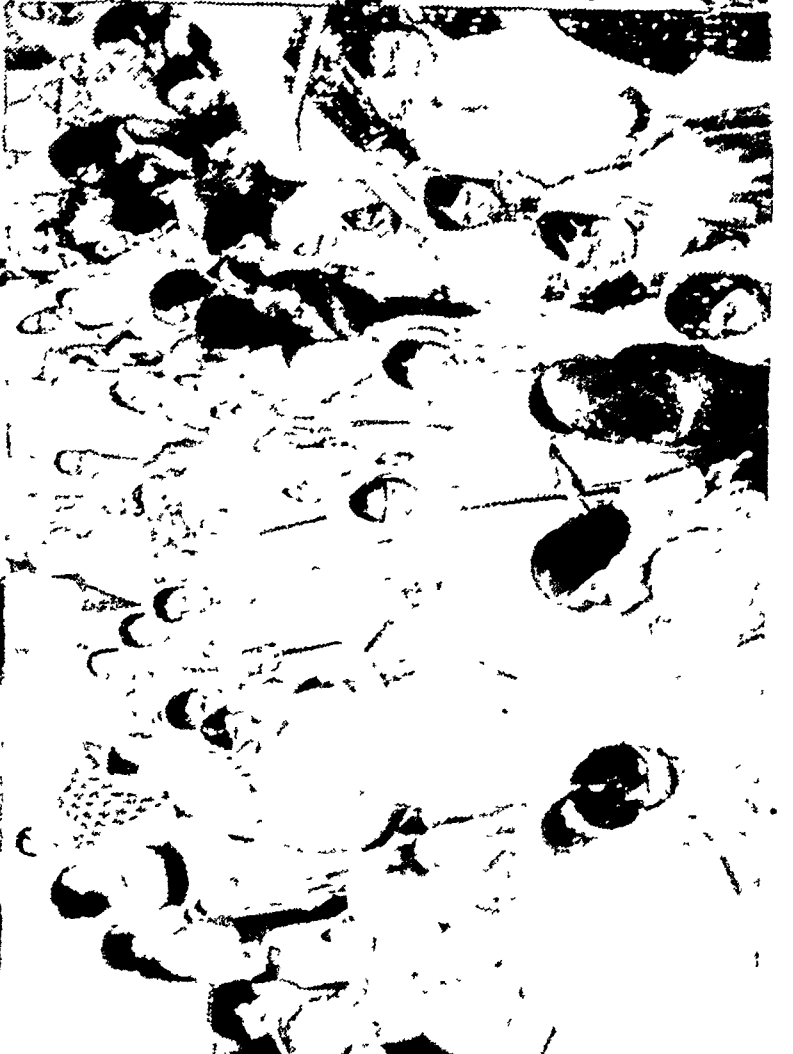
1
2
3
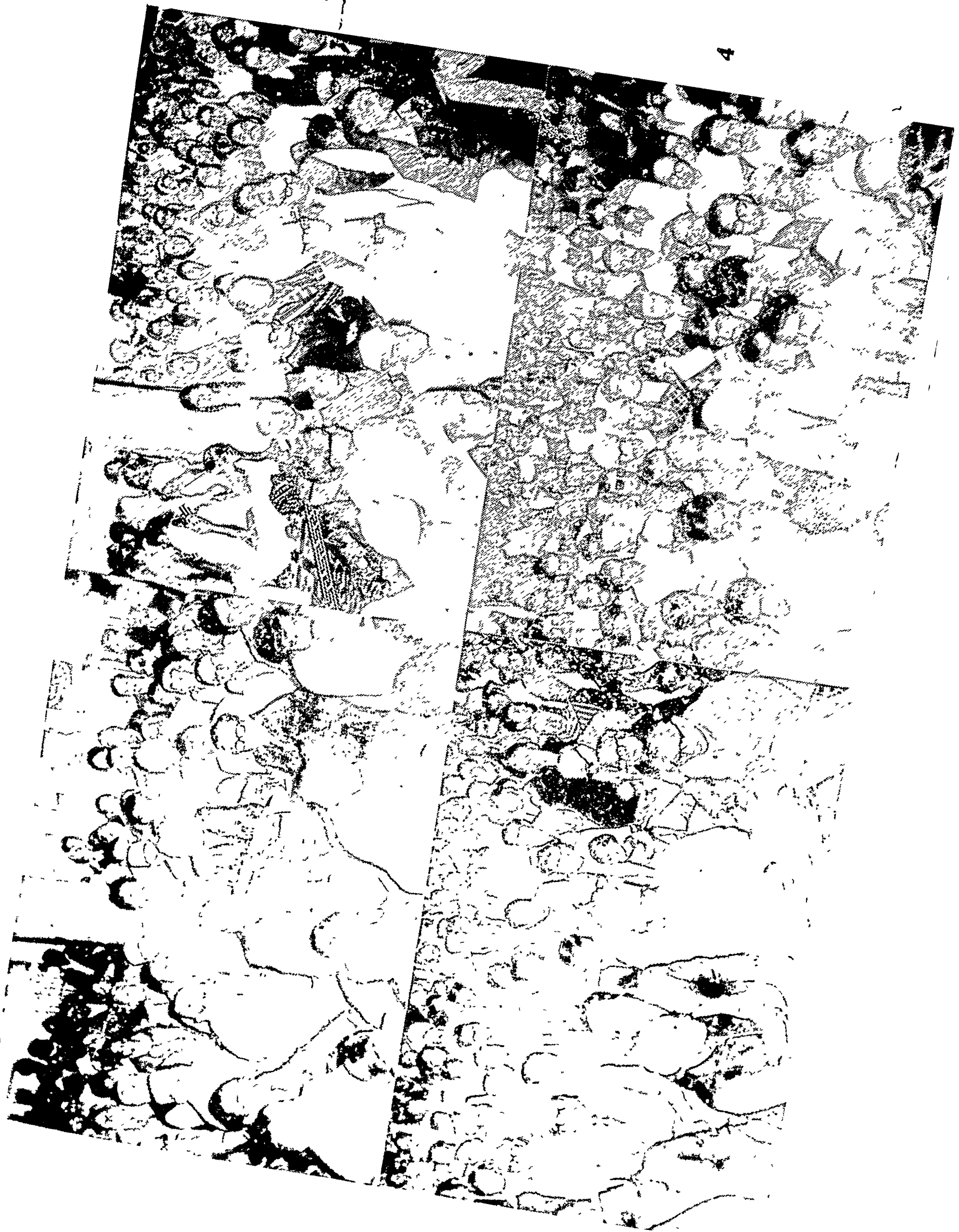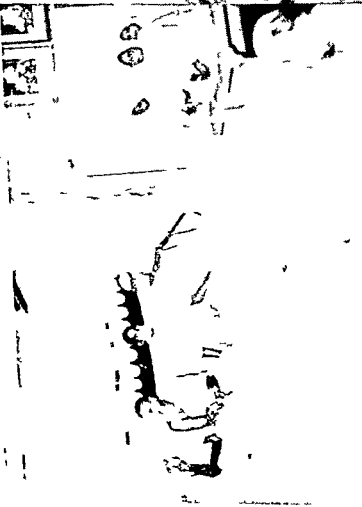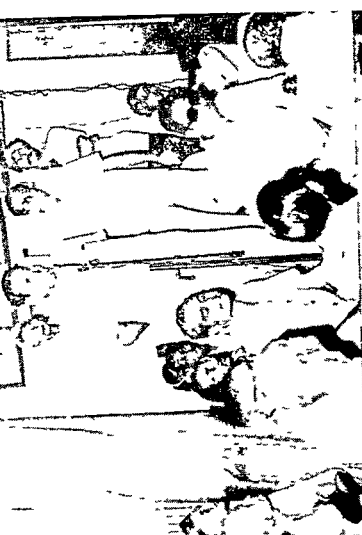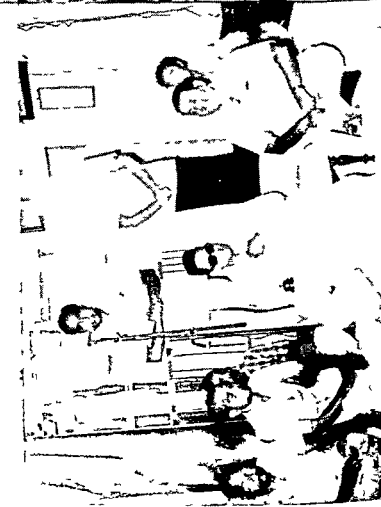
देवाधिदेव बाईसवें तीर्थपति बालब्रह्मचारी श्री नेमीनाथ प्रभु को जन्म व दीक्षा कल्याणक

तेईसवें तीर्थपति पुरुषदानी पार्श्वनाथ प्रभु का निर्वाण (मोक्ष) कल्याणक

जैन शासन के महान् ज्योतिधर पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजयलब्धिसूरीश्वरी म०सा० की बीसवीं पुण्य तिथि

आध्यात्मयोगी प्रशांतमूर्ति आचार्यदेव श्रीमद् विजय जयंतसूरीश्वरजी म० सा० की पांचवी पुण्य तिथि

निमित्त दि० 1 से 9 अगस्त, '81 तक अष्टान्हिका महोत्सव मनाया गया।

परमपूज्य आचार्यदेव श्री ह्रींकारसूरीश्वरजी म० सा० की निश्रा एवं पूज्य साध्वी श्री शुभोदयाश्रीजी की प्रेरणा से आयोजित भक्तामर महापूजन का एक दृश्य। बायीं ओर से पू० आचार्य भगवन्त, बीच में पूजा करते हुए श्री हीराचन्दजी वैद सपत्निक एवं दायीं ओर साध्वी मण्डल। विधिकारक श्री धनरूपमलजी नागौरी पूजा पढ़ाते हुए आचार्य भगवन्त के पास बैठे हैं।

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ जयपुर

महासमिति-१९७९-८१

बैठे हुए (बायीं ओर से) श्री आर सी शाह, (हिसाब निरीक्षक) श्री निमलचन्द तरेसाई (शिक्षण मंत्री) श्री दानसिंह रणावट (भंडाराध्यक्ष) श्री रणजीतसिंह भंडारी (उपाश्रय मंत्री) श्री कपिलभाई (उपाध्यक्ष) श्री हीराचन्द चौधरी (अध्यक्ष) श्री मोतीलाल भडकतिया (संघ मंत्री) श्री शिखरचन्द पालावत (मंदिर मंत्री) श्री सुभाषचन्द छजलानी (आयम्बिलशाला मंत्री) श्री भगवानराम पालीवाल (प्रचार मंत्री) एवं सदस्यगण डा० भागचन्द छाजेड़।

खड़े हुए—श्री उमरावमल साड, श्री राजमल सिंघी, श्री नरेशकुमार जैन, श्री जतनमल ढड्ढा, श्री नौरतनमल ढड्ढा, श्री उमरावमल पालेचा, श्री मोतीलाल कटारिया एवं श्री सुशीलकुमार छजलानी।

अनुपस्थित सदस्यगण श्री कस्तूरमल शाह, श्री पतनमल सुनारा, श्री हरिश्चन्द्र मेहता, श्री मनोहरमल लूणावत, श्री निलमणि ढड्ढा एवं श्री राजेन्द्र कुमार लूणावत।

अहिंसा का दीप

भगवान जी भाई वी. शाह

महावीर स्वामी—"सभी प्राणियों से मेरी मैत्री है, मुझे किसी से वैर भाव नहीं है।"

भगवान महावीर के जन्म के समय पण्डितों ने यह भविष्य वाणी की थी कि महारानी त्रिशला के गर्भ से जो पुत्र होगा वह या तो तीर्थंकर बनेगा याचक्रवर्ती सम्राट बनेगा।

पण्डितों की भविष्य वाणी सही निकली और वर्धमान बड़े होकर तीर्थंकर बने।

वर्धमान तो उनके बचनप का नाम था लेकिन बाद में कठोरतम तपस्या की और साधन के पक्ष में आने वाली अनेक प्रकार की कठिनाइयों का वीरता से सामना किया इसलिए वे भगवान महावीर कहलाये।

भगवान महावीर ने अपने धर्म का प्रचार करने के लिए चार तीर्थ की स्थापना की उनके नाम हैं—

श्रमण (साधु)—गृहस्थ जीवन त्याग कर पूर्ण संयम के साथ जीवन बिताने वाला पुरुष।

श्रमणिका (साध्वी)—गृहस्थ जीवन छोड़कर पूर्ण संयम का जीवन बिताने वाली स्त्री।

श्रावक—इसका अर्थ है उपासक। गृहस्थी में रहकर सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह के पालन का सकल्प लेने वाला पुरुष।

श्राविका—इसका अर्थ है उपासिका। श्रावक के लिए वर्णित धर्म का पालन करने वाली स्त्री।

भगवान महावीर के संघ मे 14,000 साधु; 36,000 साध्वियां और 4,77,000 श्रावक श्राविकाएं थी।

श्रमण और श्रमणी को पांच महाव्रतो का पालन करना पड़ता है वह निम्न है—

अहिंसा—इसमें इस बात का ध्यान रखा गया है कि किसी भी प्राणी को शारीरिक या मानसिक कष्ट या हानि न हो। वाणी भी ऐसी होनी चाहिच जिसमें किसी को दुःख न हो। भोजन और जल ग्रहण में भी सतर्कता बरतनी चाहिए ताकि किसी जीव की हिंसा न हो।

सत्य—सत्य बोलने के लिए बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है। बिना विचारे बोलना, क्रोध, लोभ, भय को तथा हास्य के वश में होकर बोलना असत्य भाषण को प्रोत्साहन देते हैं और सन्मार्ग से भटका देते है।

अचौर्य—अचौर्य से मतलब है कि किसी श्रमण या श्रमणी की चोरी नही करना।

ब्रह्मचर्य—ब्रह्मचर्य का पालन करने में शक्ति की वृद्धि होती है। मानसिक बल बढ़ता है।

अपरिग्रह—इस व्रत का पालन करने से कामनाएं नष्ट हो जाती है। इसके अनुसार किसी भी प्रकार के धन दौलत की इच्छा नही करनी चाहिए। इसका पालन करने वाले साधु को किसी भी वस्तु के लिए आशक्ति नही होती। ×

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ जयपुर

वार्षिक विवरण सम्वत् २०३७-३८

[महासमिति द्वारा अनुमोदित]

प्रस्तुत कर्ता—श्री मोतीलाल भडकतिया, संघ मन्त्री

परम पूज्य आचार्यदेव १००८ श्रीमद् विजय हीकारसूरीश्वरजी म० सा०, पू० पंन्यास श्री पुरन्दरविजय जी गणिवर्य, पू० बालमुनि श्री देवेन्द्रविजय जी म०, पू० बालमुनि श्री मानविजयजी म० सा०,

एव

पू० साध्वीजी श्री शुभोदयाश्रीजी म० सा०, श्री विरेशपद्माश्री जी म०, सा० श्री विद्वद्पद्माश्रीजी म०, सा० श्री विशदयशाश्रीजी म०, सा० श्री विभात्यशाश्रीजी म० साहब,

तथा

सभी साधर्मी भाइयो एव बहिनो,

शासन नायक अतिम तीर्थकर श्रमण भगवान वर्द्ध मान महावीर स्वामी के जन्म वाचना दिवस पर परम्परानुसार श्री संघ की गत वर्ष की गतिविधियो का महासमिति द्वारा अनुमोदित लेखा-जोखा लेकर मैं आपकी सेवा मे उपस्थित हू।

गत चातुर्मास

इस से पूर्व कि मैं इस चातुर्मास सम्बन्धी विवरण प्रस्तुत करु, गत वर्ष के चातुर्मास काल मे हुए कार्य कलापो का संक्षिप्त दिग्दर्शन प्रस्तुत कर रहा हू।-

जैसा कि आपको विदित है कि गत वर्ष प० पू० पंन्यास श्री पदमविजयजी म० सा० एव मुनि श्री हर्षदविजयजी म० सा० का चातुर्मास यहा पर था। उक्त चातुर्मास काल मे पर्युषण पर्व के पूर्व हुई आराधनाओ का विवरण गत वर्ष के प्रतिवेदन मे प्रस्तुत किया जा चुका था। तत्पश्चात् पर्युषण पर्व की आराधनायें बहुत ही उल्लासपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुई थी। स्वप्नोजी की बोलियो मे कीर्तिमान स्थापित किये गये। मासक्षमण सहित विशिष्ठ तपस्वियो का बहुमान चान्दी के सिक्के भेंट कर श्रीमान रूपचन्दजी भावान दासजी शाह के कर कमलो द्वारा सम्पन्न हुआ था। मणिभद्र के 22 वे पुष्प का विमोचन श्री मनोहरसिंहजी मोगरा, I A S के कर कमलो से मणिभद्र की प्रति पू० पन्यासजी म० सा० को भेंट कर सम्पन्न हुआ था। तत्पश्चात् ओलीजी की आराधनायें भी बहुत सुन्दर ढग से सम्पन्न हुई जिसमे बहुत बडी संख्या में भाई बहिनो ने भाग

लिया। चातुर्मास पलटवाने का लाभ संघ के उपाध्यक्ष श्री कपिल भाई के शाह ने लिया था। चातुर्मास पूर्ण होने पर पन्यासजी म०सा० ने पंजाब की ओर बिहार किया।

वर्तमान चातुर्मास

वर्तमान चातुर्मास हेतु समुचित प्रयास किये गये एवं स्वीकृति की सम्भावनानुसार पू० आचार्य देव १००८ श्रीमद् विजय ह्रींकारसूरीश्वरजी म० सा० की सेवा में सर्वप्रथम संघ के उपाध्यक्ष एवं संयोजक चातुर्मास व्यवस्था उप समिति श्री कपिल भाई के शाह एव उपाश्रय मत्री श्री रणजीतसिंहजी भंडारी मेडता में आपकी सेवा में उपस्थित हुए एवं महासमिति की ओर से चातुर्मास हेतु विनती प्रेषित की। तत्पश्च'त् चैत्र सुदी पूर्णिमा दि० १८-४-८१ को पुनः सघ के अध्यक्ष श्री हीराचन्द जी चौधरी के नेतृत्व में सात सदस्यीय प्रतिनिधि मण्डल जिनमें सर्व श्री कपिलभाई, शिखरचन्दजी पालावत, उमरावमलजी पालेचा, दानसिंहजी कर्णावट, राजमलजी सिंघी एवं मोतीलाल भडकतिया सम्मिलित थे, श्री फलवृद्धि पार्श्वनाथ तीर्थ मेडता रोड-जहां पर कि उस समय आचार्य भगवन्त विराजमान थे–उपस्थित हुए एव यह चातुर्मास जयपुर में ही करने की साग्रह विनती की। आचार्यभगवन्त ने अत्यन्त कृपा करके और जयपुर श्री संघ की आग्रह भरी विनती को मान देते हुए यह चातुर्मास जयपुर में करने को स्वीकृति प्रदान की। यद्यपि उसी दिन नागौर, सोजत, मेडता आदि विभिन्न स्थानों के प्रतिनिधि भी चातुर्मास स्वीकार कराने हेतु पधारे थे लेकिन आपने जयपुर के लिए स्वीकृति प्रदान कर इस श्रीसंघ पर असीम कृपा की उसके लिए यह संघ आपका अत्यन्त कृतज्ञ है। पुनः दि० १३-५-८१ को सर्व श्री कपिलभाई, रणजीतसिंहजी भंडारी, मनोहरमलजी लूनावत एवं मोतीलाल भडकतिया उम्मेदपुर में स्थित श्री पार्श्वनाथ जिनालयतीर्थ पर आचार्य भगवन्त की सेवा में उपस्थित हुए और यहां पर हर्षोल्लास के वातावरण में जय बुलाई गई।

इसी प्रकार परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय विक्रम सूरीश्वर जी म० सा० की आज्ञानुवर्ती साध्वी श्री सर्वोदया श्री जी म० सा० की सुशिष्या साध्वीजी श्री शुभोदया श्रीजी आदि ठाणा ५ से भी यह चातुर्मास जयपुर में ही करने की विनती प्रस्तुत की गई और पूज्य आचार्यदेव श्री विक्रमसूरीश्वर जी म० सा० की स्वीकृति प्राप्त होने पर जयपुर से एक यात्री बस बडीशाखान (जि० अलवर) को वैसाख सुदी ३ को गई। इसी दिन उक्त गांव में नव निर्मित मन्दिर जी की प्रतिष्ठा एवं पू० साध्वी श्री विरेश पद्मा श्री जी म० सा० के वर्षी तप का पारणा था। चूंकि यह प्रतिष्ठा पू० साध्वी जी म० सा० द्वारा सम्पन्न करायी जा रही थी, वहा पर विशाल एवं भव्य आयोजन हो रहा था। इस अवसर पर आयोजित विशिष्ट समारोह मे इस श्री संघ के अध्यक्ष श्री हीराचन्द जी चौधरी ने सभी सह-यात्रियों सहित चातुर्मासिक विनती की। चूंकि लगातार पिछले पांच वर्षों से पू० साध्वी जी म० सा० पल्लीवाल क्षेत्र में जिन शासन सेवा में संलग्न थी, पल्लीवाल क्षेत्र के आगेवान अभी भी आपको उसी क्षेत्र में रखने के लिए लालायित थे लेकिन आप श्री ने गुरु आज्ञानुसार जयपुर श्री संघ की विनती को स्वीकार करते हुए यह चातुर्मास जयपुर में करने की सहमति व्यक्त की। इस अवसर पर श्री संघ की ओर से साध्वी जी म० सा० को कामली वोहराई गई और जय बुलाई गई।

पू० आचार्य भगवन्त एवं अन्य मुनि गण भीषण गर्मी और मौसम की प्रतिकूलताओं के उपरान्त भी और विशेष रूप से आचार्य भगवन्त के

निरंतर चलने वाले अट्ठम तप की तपस्या के उपरान्त भी उग्र विहार करते हुए एक माह के अल्प समय मे तखतगढ से जयपुर पधारने की कृपा की। मार्ग मे अस्वस्थता की स्थिति भी बनी लेकिन सभी तरह के परिषह सहन करते हुए आपने जयपुर पधारने की जो कृपा की है उसके लिए यह सघ आपका अत्यन्त ऋणी एव कृतज्ञ है।

इसी प्रकार पू० साध्वी जी म० सा० श्री शुभोदयाश्री जी आदि ठाणा-५ ने भी कठिन परिश्रम और मार्ग की विषम परिस्थितियो को सहते हुए भी जयपुर पधारने की कृपा की है उसके लिए भी यह सघ आपका कृतज्ञ है।

पू० आचार्य भगवन्त के जयपुर पधारने पर दिनाक ७-७-८१ को नगर प्रवेश का भव्य आयोजन सम्पन्न हुआ। त्रिपोलिया गेट से जुलूस प्रारम्भ हुआ जिसमे सैकडो की सख्या मे भाई बहिन सम्मिलित हुए। बैंडबाजे, हाथी, घोडे लवाजमे, झाकिया आदि तो जुलुस मे थे ही, जैन समुदाय के विभिन्न सघो के प्रतिनिधि भी बडी सख्या मे सम्मिलित थे। मार्ग मे तोरण द्वार बनाये गये थे। अनेको स्थानो पर गवलिया करके गुरु भक्ति की गई। श्री आत्मानन्द सभा भवन पहुचने पर श्री सघ के अध्यक्ष श्री हीराचन्द जी चौधरी ने आपकी अगवानी की। इस अवसर पर आयोजित विशाल सभा मे आपका अभिनन्दन एव बहुमान किया गया। सभा को उद्बोधित करते हुए आचार्य भगवन्त ने नवकार महामन्त्र की आराधना और प्रभु भक्ति सहित प्रतिमा पूजन की महत्ता का प्रतिपादन किया। सघ मन्त्री श्री मोतीलाल भडकतिया ने चातुर्मास कालिक व्यवस्थाओ पर प्रकाश डाला। उपाश्रय मन्त्री श्री रणजीत सिंह जी भडारी ने धन्यवाद ज्ञापित किया। दिन मे श्री पार्श्वनाथ पच कल्याणक पूजा प्रभावना का भव्य आयोजन सम्पन्न हुआ।

इसी तरह से पू० साध्वी जी म० सा० श्री शुभोदयाश्री जी म० सा० आदि ठाणा-५ के जयपुर आगमन पर मुहूर्तानुसार दि० ३ जुलाई १९८१ को प्रात ५-३० बजे नगर प्रवेश जुलुस सागानेरी दरवाजे से प्रारम्भ होकर बैंडबाजे के साथ श्री आत्मानन्द सभा भवन पहुचा। यहा पहुचने पर आपका अभिनन्दन एव बहुमान किया गया। पू० साध्वीजी म० सा० ने भी सभा को सम्बोधित किया।

आराधनायें

पू० आचार्य भगवन्त एव पू० साध्वी जी म० सा० के जयपुर आगमन के साथ ही आराधनाओं की झडी लग गई। उपवास, बेले, तेले, अट्ठाई आदि तो अनेको हुई, कई विशिष्ट तपस्यायें भी हुई एव हो रही हैं। अभी तक जिन मन्दिर में लगभग १५ पूजाए पढाई जा चुकी हैं।

अष्ठान्हिका महोत्सव

देवाधिदेव बाईसवे तीर्थपति बालब्रह्मचारी श्री नेमीनाथ प्रभु का जन्म व दीक्षा कल्याणक, तेईसवे तीर्थपति पुरीषादानी पार्श्वनाथ प्रभु का निर्वाण कल्याक, जैन शासन के महान ज्योतिर्धर पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय लब्धिसूरीश्वर जी म० सा० की बीसवी पुण्य तिथि, आध्यात्मयोगी प्रशांतमर्ति आचार्यदेव श्रीमद् विजय जयतसूरीश्वर जी म० सा० की पांचवीं पुण्य तिथि निमित्त अष्ठान्हिका महोत्सव कराने का निश्चय किया गया। परम पूज्य आचार्य भगवन्त श्रीमद् विजय ह्रींकारसूरीश्वरजी म० सा० की निश्रा एव पू साध्वी श्री शुभोदयाश्री जी म सा की सद्प्रेरणा से यह अष्ठान्हिका महोत्सव का सम्पूर्ण कार्यक्रम बहुत ही उल्लासपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ। अष्ठान्हिका महोत्सव के मध्य ही श्री भक्तामर महापूजन एव अट्ठारह अभिषेक के आयोजन विशेष उल्लेखनीय रहे। ज्ञातव्य काल मे भक्तामर महापूजन का आयोजन जयपुर मे पहली बार होना बताया गया है जिसका लाभ श्री बुधसिह जी हीराचन्द जी बैद को प्राप्त हुआ एव अट्ठारह अभिषेक कराने का लाभ श्री मगलचन्द

ग्रुप को प्राप्त हुआ। पूजाओं के क्रम में तीन दिन तक निरन्तर पूजाएं श्री भोगीलाल जी रेवचन्द जी धानेरावालों की तरफ से पढाई गई। शेष तीन पूजाये श्री श्राविका सघ, श्री सोहनराज जी निर्मल चन्द जी पोरवाल एवं श्री रणजीतसिह जी भंडारी द्वारा कराई गई। भक्तामर महापूजन एवं अट्ठारह अभिषेक के दिन क्रमशः २१००० एवं ४१००० पुष्पो की आंगी कराने का लाभ दो भिन्न सद्-गृहस्थों की तरफ से लिया गया। विधि विधान श्री घनरूप मल जी नागौरी ने सम्पन्न कराए।

भक्तामर महापूजन के पश्चात् प्रतिमाओं पर आमी का प्रभाव एवं अट्ठारह अभिषेक के अवसर पर समस्त प्रतिमाओं सहित मंदिर की परिधि में दीवार–2 और स्थान 2 पर आमी झरन का जैसा अद्भुत एवं चमत्कारिक दृश्य उपस्थित हुआ उसका वर्णन लेखनी से सम्भव नहीं है। जीवन में ऐसे अवसर यदाकदा ही प्राप्त होते है जब कि भवी जीवों को ऐसी अदभुत लीलाएं एवं अधिष्ठायक देव के चमत्कारों से साक्षात्कार करने का सौभाग्य प्राप्त होता है। जिन्होंने भी यह दृश्य देखा, धन्य 2 कह उठे।

इसी मध्य नवकार महामत्र के जाप सहित नव-दिवसीय एकासणों की तप आराधना भी सम्पन्न हुई। एकासणा-आयम्बिल कराने का लाभ निम्न जिनेश्वर भक्तों ने लिया :—

(१) श्री मगलचन्द ग्रुप (२) एक सद्गृहस्थ (३) श्री वच्चूभाई शांतिभाई (४) श्री फतेहसिहजी कर्णावट (५) श्रीमती मंजूला वहिन (६) श्री कांतिलभाई के शाह (७) श्री हीराचन्द जी ढड्ढा (८) श्री मंगलचन्द ग्रुप एव (९) श्रीमती गुण सुन्दरी वाई भंडारी।

दि० 23-8 81 को विशद्यशाश्रीजी के एव सा० श्री विभात यशाश्रीजी के 20

तपस्यायें

जिस प्रकार जयपुर में यह प्रथम अवसर जब कि आचार्यभगवन्त का चातुर्मास सम्पन्न हो रहा है, दो विभिन्न सिघाडों के साधु-साध्वी चातुर्मास हेतु बिराजमान है, उसी प्रकार वर्षोंउपरान्त जयपुर में प्रथम बार साध्वीजी महाराज की विशिष्ठ तपस्यायें सम्पन्न हो रही हैं।

साध्वी श्री विशद्यशाश्रीजी म० सा० की ३४ एवं साध्वी श्री विभात्यशाश्रीजी म० सा० की मासक्षमण करने की भावना है और यह प्रतिवेदन मुद्रित करते समय तक दि० 23-8-81 को विशद्यशाश्रीजी पारणा एवं सा० श्री विभात्यशा श्रीजी के २० उपवास हो चुके थे। साध्वी श्री विद्ववद्पद्-माश्रीजी म० सा० के भी ३३वीं वर्द्धमान ओलीजी चल रही है।

दैनिक कार्यक्रम

आचार्य भगवन्त का प्रतिदिन प्रातः ८--३० बजे से विपाक सूत्र पर आधारित प्रवचन श्री आत्मानन्द सभा भवन में हो रहा है। सूत्र वोहराने का लाभ श्री मंगल चन्द ग्रुप द्वारा लिया गया एव पांचों ज्ञान पूजाओं का लाभ (१) श्री पारसमलजी खवाड (२) पारसदासजी चिंतामणिजीढड्ढा (३) श्री कपिल भाई के शाह (४) श्री बुधसिहजी हीराचन्दजी वैद एवं (५) श्री विलमकान्त देसाई ने लिया।

आचार्य भगवन्त एवं साध्वीजी म० सा० की उपस्थिति से जयपुर श्रीसंघ में अत्यन्त हर्षोल्लास का वातावरण वना हुआ है और विभिन्न प्रकार की तपस्यायें आदि तो हो ही रही है, महिला वर्ग में अत्यधिक उत्साह है।

छ री पालित सघ

इससे पूर्व कि मैं सघ की स्थायी गतिविधियो के बारे में विवेचन प्रारम्भ करू, इस वर्ष मे हुए कुछ उल्लेखनीय आयोजनो का सक्षिप्त जिक्र करना चाहू गा।

लगभग सात वर्ष पूर्व दि० ५-३ ७४ को कलकत्ता से सिद्धाचलजी छ री पालित सघ का जयपुर मे आगमन हुआ था और उस समय के भव्य आयोजनो की स्मृतिया जन जन के स्मृति पटल पर सजग थी।

इस वर्ष पुन छ री पालित सघ के जयपुर आगमन की पुनरावृत्ति हुई और जयपुर को ऐसे महान छ री पालित सघ की भक्ति का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आचार्य भगवत श्रीमद विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी म० सा० के शिष्यरत्न पन्यासजी भद्र कर विजयजी म० सा० के शिष्य शिरोमणि पन्यास पूज्यपाद श्री जिनप्रभविजयजी म० सा० की पावन निश्रा मे एव श्रेष्ठिवर्य सघवीजी शा० सरेमलजी त्रिलोकचन्दजी जैन, कोसेलाव निवासी द्वारा सयोजित कोसेलाव से सम्मेतशिखरजी महातीर्थ यात्रार्थ १११ दिवसीय छ री पालित चतुर्विध श्री सघ का दि० ४ जनवरी, १९८१ को जयपुर में शुभागमन हुआ। सघ के साथ मे मुनिगण, साध्वीवर्ग एव लगभग ३०० यात्री आदि सम्मिलित थे।

सघ के जयपुर आगमन पर बहुत ही उल्लासपूर्ण वातावरण मे समैयया किया गया। चेम्बर भवन से जुलूस प्रारम्भ हुआ जिसमें हजारो की सख्या मे नर-नारी तो सम्मलित थे ही, दो बेड, हाथी, घोडे ऊट, लवाजमा, झाकिया, शहनाई वादन आदि सहित लगभग एक किलोमीटर लम्बा जुलूस सयोजित था। हाथी पर प्रभु प्रतिमा को लेकर बैठने का लाभ श्री हीराचन्दजी वैद ने लिया था। मार्ग में स्थान २ पर तोरण द्वार बनाए गए थे। अनेको गवलिया करके पूज्य महाराज साहब की गुरु भक्ति एव सघपतिजी सहित समस्त सघ का स्वागत किया गया। जुलूस नए दरवाजे, बापू बाजार, जौहरी बाजार होते हुए घीवालो के रास्ते मे स्थित श्री आत्मानन्द सभा भवन पहुचा। मार्ग मे वीरबालिका विद्यालय की बालिकाओ द्वारा वाद्य यत्रो की धुनो से स्वागत किया गया एव घी वालो के रास्ते पर इस श्री सघ द्वारा सचालित धार्मिक पाठशाला की बालिकाओ द्वारा कलश बधाई की गई।

श्री आत्मानन्द सभा भवन में स्वागतार्थ विशाल सार्वजनिक सभा का आयोजन था। सर्व प्रथम पू० मुनिराज श्री जिनप्रभविजयजी म० सा० को कामली वोहरा कर अभिनन्दन एव बहुमान किया गया। तत्पश्चात् सघपतिजी के स्वागत का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। श्री जैन श्वे० तपागच्छ सघ की ओर से सघ के अध्यक्ष श्री हीराचन्दजी चौधरी ने सघपतिजी को भाल तिलक कर चूदडी का साफा पहिनाया। सघ की ओर से मान पत्र भेट किया गया। जिसका वाचन सघमत्री श्री मोतीलाल भडकतिया ने किया एव सघ के भू अध्यक्ष श्री किस्तूमलजी शाह ने सघपतिजी को मान पत्र भेट किया। सघ के उपाध्यक्ष श्री कपिल भाई के शाह ने गलीचा भेंट कर अपनी भक्ति व्यक्त की। सघपतिजी की धर्मपत्नी श्रीमती देवी बहिन को चूदडी की साडी भेंट की गई एव समस्त यात्रियों को भगवान नेमीनाथ स्वामी के चित्र सहित नगद प्रभावना की गई। सघपतिजी के पुत्र श्री अम्बालालजी श्री किरणभाई एव आपकी पुत्र वधुए श्रीमती विमला बहिन एव श्रीमती मधुबाला बहन का भी स्वागत किया गया।

इस अवसर पर श्वेताम्बर दिगम्बर आम्नाय के विभिन्न संघो के प्रतिनिधि, पदाधिकारी एवं अनुयायी वृहद संख्या में उपस्थित थे । श्री खरतरगच्छ संघ की ओर से श्री उमरावमल जी बढेर, श्रीमाल सभा की ओर से श्री लालचन्द जी बैराठी, मुलतान सभा की ओर से श्री राजकुमार जी जैन स्थानकवासी श्रमण संघ के अध्यक्ष श्री इन्दर चन्द जी हीरावत, साधुमार्गी संघ की ओर से श्री गुमानमलजी चोरडिया, तेरापंथी समाज की ओर से श्री राजकुमारजी बरडिया, राजस्थान जैन सभाकी ओर से श्री कपूरचन्दजी पाटनी, महावीर इण्टर नेशनल की ओर से श्री दिलबागरायजी जैन, भारत महामण्डल की ओर से श्री ताराचन्दजी बख्शी, अलवर समाज की ओर से श्री शिखरचन्दजी पालावत, सिरोही समाज की ओर से श्री भाष्करभाई, जयपुर पल्लीवाल समाज की ओर से श्री भगवान दासजी पालीवाल, हिण्डोन पल्लीवाल समाज की ओर से कपूरचन्दजी जैन, मरुधर समाज की ओर से श्री हरिश्चन्द्रजी मेहता, किशनगढ संघ की ओर सेश्री वीर बहादुर सिंहजी भंडारी आदि-आदि द्वारा संघ पतिजी को भेंट—माल्यार्पण द्वारा किया गया स्वागत विशेष उल्लेखनीय है । श्री लक्ष्मीचन्दजी भंसाली के स्वागत गीत ने सभा मे समा बाध दिया ।

संघपतिजी ने संघ की ओर से उनके अभूतपूर्व एव भव्य स्वागत के लिए आभार व्यक्त किया । श्री रणजीतसिंहजी भंडारी, उपाश्रय मत्री तपागच्छ संघ से धन्यवाद ज्ञापित किया ।

तदनन्तर साधर्मी वात्सल्य का आयोजन श्री संघ के तत्वाधान मे सम्पन्न हुआ जिसका लाभ एक सद्गृहस्थ हस्ते श्री तरसेम कुमार जी जैन की ओर से लिया गया । एक दिवसीय अल्पकालिक प्रवास के पश्चात् श्रीसंघ ने अगले दिन प्रातः प्रस्थान किया । विदाई हेतु भी बहुत बडी सख्या मे साधर्मी भाई बहिन सम्मिलित हुए ।

सामूहिक क्षमापना दिवस :

यह जयपुर जैन जगत की विशेषता है कि यहां पर प्रतिवर्ष सम्वत्सरी के पश्चात् सामूहिक क्षमापना दिवस का आयोजन होता है जिसमें श्वेताम्बर समाज के सभी संघों के बिराजित साधु साध्वी एवं श्रावक श्राविकायें सम्मिलित होती है । प्रतिवर्ष यह आयोजन शिवजीराम भवन में सम्पन्न होता रहा था लेकिन इस बार यह निश्चय किया गया कि यह आयोजन एक ही स्थान पर नहीं होकर क्रमशः विभिन्न संघों के उपाश्रय एवं स्थानकों में सम्पन्न हों ताकि सभी संघों के भाई बहिन वहां पर पहुंचे और आपसी सौहार्द में] और वृद्धि हो ।

तदनुसार 16–9–80 को श्री आत्मानन्द सभा भवन मे आयोजन किया गया और इस सघ द्वार सारे कार्यक्रम का आयोजन एव संचालन किया गया तपागच्छ संघ के पू० पन्यास श्री पदम विजयजी म० सा०, तेरापंथी सघ के मुनि श्री जसकरणजी म सा., खरतरगच्छ संघ की साध्वीजी श्रीमनोहरश्रीजी म. सा, अपने शिष्य समुदाय महित तो पधारे ही, चार संघो के पदाधिकारी एवं अनुयायी वृहद् संख्या मे सभा में उपस्थित थे । स्थानकवासी संघ के संघमंत्री श्रीमान गुमानमलजी सा0 चौरडिया ने सभा की अध्यक्षता की एवं माननीय श्री गुमानमलजी लोढा, न्यायमूर्ति राजस्थान उच्च न्यायालय मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित हुए । श्री हीराचन्दजी चौधरी, अध्यक्ष तपागच्छ संघ ने अतिथियों एवं आगन्तुकों का स्वागत करते हुए सभा की कार्यवाही प्रारम्भ की । इस अवसर पर सभी संघों के पदाधिकारियो एवं अनुयायियों द्वारा व्यक्तिगत एवं अपने संघो की ओर से क्षमा याचना करते हुए अपने विचार व्यक्त किए गए । तीनों ही साधु-साध्वीजी म0 सा0 द्वारा भी सभा को उद्बोधन दिया गया । मुख्य अतिथि एव अध्यक्षजी के भाषण भी हुए ।

श्री मोतीलाल भडकतिया, सघ मत्री, तपागच्छ सघ ने इस भव्य आयोजन मे सहयोग के लिए सभी का धन्यवाद ज्ञापित किया ।

हिण्डौन मे मासक्षमरण के पारणे के अवसर पर उपस्थिति

आसोज सुदी ५ सम्वत् २०३७ को हिण्डोन में बिराजित साध्वी श्री शुभोदयाश्रीजी की शिष्य समुदाय मे से साध्वी श्री विशदयशाश्रीजी म0 सा0 का मास क्षमरण एव साध्वी श्री विभात्यशाश्रीजी म0 सा0 का १५ उपवास के पारणे निमित विशाल एव भव्य आयोजन था । इस शुभ अवसर पर जयपुर से भी इस श्रीसघ के तत्वावधान मे एक यात्री बस हिण्डोन ले जाई गई । यात्रियो की ओर से ५०१) की राशि हिण्डोन श्रीसघ को भेंट की गई । अन्य सीगों मे भी योगदान किया गया । तत्पश्चात् महावीरजी तीर्थ की यात्रा करते हुए एव खोह ग्राम मे आयोजित वार्षिकोत्सव मे सम्मिलित होने के पश्चात् यात्री सानन्द जयपुर लौट ।

अन्य पधारे हुए साधु साध्वी वृन्द की भक्ति :

उपरोक्त विशेष उल्लेखनीय घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करने के पश्चात् अब मुझे यह ज्ञात कराते हुए भी हार्दिक प्रसन्नता है कि गत चातुर्मास की समाप्ति एव इस चातुर्मास काल के प्रारम्भ से पूर्व निम्नाकित साधु साध्वीवृन्द की भक्ति, वैयावच्च चिकित्सा एव अगले गतव्य स्थान तक पहुचाने की व्यवस्था करने का सौभाग्य भी इस श्रीसघ को प्राप्त हुआ –

१) पू० सा० श्री देवेन्द्रश्रीजी म० सा०, ठाणा–२
२) " श्री शुभोदयाश्रीजी म० सा०, ठाणा–३
३) " श्री अभ्युदयाश्रीजी म० सा०, ठाणा–२
४) " श्री जसवतश्रीजी म० सा० –ठाणा–६
५) पू "मुनिराज श्री भुवनसुन्दर विजयजी म० सा० —ठाणा–४
६) पू० पन्यास श्री जिनप्रभविजयजी म० सा० ठाणा ४ (सम्मेतशिखरजी से लौटते हुए)
७) पू० सा० श्री प्रियदर्शनाश्रीजी –ठाणा १०
८) पू० सा० श्री पुण्योदयाश्रीजी, ठाणा-४

सघ भक्ति :

उपरोक्त भक्ति के अलावा विभिन्न स्थानों से सामूहिक रूप मे बसो से आए हुए सघो की साधर्मी भक्ति करने का सौभाग्य भी इस श्रीसघ को प्राप्त हुआ है जिनमे मेरठ शम्मी मलार कोटला, रतलाम पट्टी, कच्छ का घराघरा आदि सघ विशेष उल्लेखनीय है । व्यक्तिगत रूप में पधारे हुए साधर्मियों की सेवाकरने का सौभाग्य तो समय समय पर पृथक से मिलता ही रहा है ।

पर्यूषण के पश्चात् की एक दिवसीय बृहद् यात्रा के यात्रियो की सघ भक्ति भी जनता कालोनी मे स्थित मदिर पर पधारने पर इस श्रीसघ द्वारा की गई ।

सघ की स्थायी गतिविधिया

उपरोक्त विशेष उल्लेखनीय घटनाओ का विवरण प्रस्तुत करने के पश्चात् अब मैं आपकी सेवा मे इस श्री सघ की स्थायी गतिविधियो के सम्बन्ध मे जानकारी प्रस्तुत कर रहा हू ।

श्री सुमतिनाथ जिन मदिर, जयपुर

श्री सुमतिनाथ स्वामी के मदिर की व्यवस्था यथावत् व्यवस्थित एव सुन्दर ढग से सचालित होती रही । इस सीगे मे कुल १,३६,१८७) ४३ की प्राप्तिया हुई जिसमे केवल इसी मदिर से ९९,३३१६,२) ३५ प्राप्त हुए हैं । शेष राशि अन्य

अधीनस्थ जिनालयों से प्राप्त हुई। पूजन खर्च सहित अन्य विशेष खर्चों में कुल ८१,३९६) ९८ व्यय हुए। गत दो वर्ष पूर्व जो देव द्रव्य से पूजन द्रव्य (साधारण देव द्रव्य) पृथक किया गया था उसके अन्तर्गत देव साधारण में कुल १५,९९७)७८ की प्राप्तिया हुई। इसके मुकाबले में एक मुश्त पृथक से सामग्री एवं सहायता प्राप्त होने के अतिरिक्त १०४८१)९९ का खर्चा हुआ है।

गत वित्तिय वर्ष में तो सुयोग्य कलाकार की सेवायें प्राप्त नहीं हो सकी थीं लेकिन इस वर्ष में श्री सुभाषचन्द मारोठवाले से रंग रोगन का आंशिक जीर्णोद्धार का कार्य कराया गया है। आगे भी कार्य जारी रहना सम्भावित है।

गत वार्षिक विवरण में मंदिरजी में जिन कार्यों को सम्पन्न कराने का उल्लेख किया गया था उसके तहत:—

(१) श्री अम्बिकादेवी के आले में संगमरमर का कार्य सम्पन्न हो गया है और अव यह स्थान भव्य और दर्शनीय बन गया है।

(२) भंडार में स्थित चान्दी के सामान की मरम्मत का कार्य गत वर्ष काफी पूरा करा लिया गया था, शेष बचे हुए सामान की मरम्मत आदि का कार्य पूर्ण हो गया है।

(३) शासनमाता श्री महाकाली देवीजी के आले को चान्दी का बनवाने का उल्लेख गत वर्ष के प्रतिवेदन में किया गया था। महासमिति को यह अंकित करते हुए प्रसन्नता है कि यह कार्य भी लगभग पूर्ण हो गया है। आलिये के अन्दर के हिस्से में काच का कार्य करवाया गया है और बाहर के हिस्से में चान्दी का पट्ट, किवाड, चौखट आदि बनवा लिए गए हैं जिस पर अभी तक कुल रु० २१,४१५)९७ की राशि व्यय हो चुकी है। फर्श को चान्दी का बनवाना आदि कुछ कार्य शेष है। वह भी शीघ्र पूर्ण होने की आशा है। इस हेतु सात किलो चान्दी खरीदी गई है।

भगवान श्री जयवर्द्धन पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमाजी, जिनकी प्रतिष्ठाजी सम्वत् २०२४ में सम्पन्न हुई थी, कालान्तर से सोने और रग आदि का कार्य जीर्ण हो गया था। अब यह कार्य भी पूरा करा लिया गया है।

फेरी, मूल गम्भारे सहित कुछ दीवारों पर सील आने एवं चूने के जीर्ण हो जाने के कारण दीवारे एब कलात्मक कार्य क्षतिग्रस्त हो रहे हैं। मंदिर जी की प्राचीनता को दर्शनीय बनाए रखने की तीव्र भावना होते हुए भी सुरक्षा एवं सुधार की आवश्यकता सर्वोपरि हो गई है। फेरी में संगमरमर लगाने हेतु प्रतिष्ठानों से तखमीने मांगे गए है एवं आशा है कि यह कार्य भी शीघ्र ही हाथ में लिया जावेगा।

मूल गम्भारे में विराजित भगवान श्री धर्मनाथ स्वामी की चलायमान प्रतिमाजी को भी कमलनुमा कलश में स्थायी रूप से विराजमान कराने हेतु रूपरेखा तैयार कर ली गई है और यह कार्य भी शीघ्र ही प्रारम्भ करने की भावना है।

सेवा पूजा, प्रतिदिन आंगी आदि का कार्य बहुत ही सुन्दर ढंग से निरन्तर सम्पन्न होता रहा है और सेवा पूजा करने का सौभाग्य प्राप्त करने वालों की संख्या में भी निरन्तर वृद्धि हो रही है। आराधको की सुविधा का भरसक ध्यान रखा जा रहा है और हर प्रकार की साधन सामग्री उपलब्ध कराई जा रही है। आ० भगवन्त के पधारने के पश्चात् प्रतिदिन प्रातः सायं २५ दिवों की आरती होती है।

श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी का मंदिर, जनता कालोनी, जयपुर

इस मंदिर मे सेवा पूजा का कार्य भी वर्ष भर सम्पन्न होता रहा है।

गत वर्ष सम्पन्न हुए २३ वें वार्षिकोत्सव के पश्चात् यहा पर सेवा पूजा दर्शन वन्दन करने वाले भाई बहिनों की सख्या मे और वृद्धि हुई है और इस क्षेत्र मे रहने वाले साधर्मियो के लिए आराधना का उपयुक्त स्थान एव साधन उपलब्ध हुआ है।

गत वर्ष की भांति ही इस वर्ष भी २ अगस्त, १९८१ रविवार को २४ वें वार्षिकोत्सव का सुन्दर आयोजन सम्पन्न हुआ। परम पूज्य आचार्य भगवन्त १००८ श्री ह्रींकारसूरीश्वर जी म० सा० मुनि मण्डल एव पू० साध्वीजी श्री प्रमोदयाश्री जी म० आदि ठाणा भी इस अवसर पर पधार और आप सभी की निश्रा मे वार्षिकोत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर पू० आचार्य भगवन्त का प्रवचन हुआ, श्री पार्श्वनाथ पंच कल्याणक पूजा पढाई गई और तत्पश्चात् पूर्ववत् साधर्मी भक्ति का आयोजन सम्पन्न हुआ।

जैसा कि गत वर्ष के प्रतिवेदन मे उल्लेख किया गया था, इस जिनालय की व्यवस्था हेतु श्री सुशीलकुमार जी छजलानी के सयोजकत्व मे सात सदस्यीय उप समिति का गठन किया गया था। वर्ष भर उक्त उप समिति की देखरेख में कार्य सम्पन्न होते रहे।

इस क्षेत्र मे साधर्मी बन्धुओ की सख्या मे अभिवृद्धि को दृष्टिगत रखते हुए अब शीघ्रातिशीघ्र भव्य जिनालय निर्माण की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। इस हेतु नक्शा तो पूर्व मे ही बन गया था लेकिन जिन बिम्ब स्थापित करने हेतु स्थान एव जिनालय के स्वरूप के बारे में निश्चित निर्णय करने से पूर्व हर प्रकार से आश्वस्त होना आवश्यक है और इसी के कारण विलम्ब हो रहा है। श्री छजलानीजी द्वारा इस ओर प्रयास जारी है। पालीताणा में विराजित कुछ आचार्य भगवन्तों से भी मार्गदर्शन प्राप्त करने का प्रयास किया गया है एव चातुर्मास हेतु विराजित आ० श्री ह्रींकार सूरीश्वरजी म० सा० से भी मार्गदर्शन प्राप्त किया जा रहा है। आप श्री ने स्थान का अवलोकन किया है। पर्यूषण पर्व पूर्ण होने पर इस बारे में विस्तार से विचार विमर्श कर निश्चित निर्णय पर पहुंचने का प्रयास किया जावेगा।

वर्तमान मे स्थित कमरो के पुनर्निर्माण, बाथ रूम बनाने, बिजली का फिटिंग कराने आदि का जो कार्य गत वर्ष प्रारम्भ किया गया था, अब लगभग पूर्ण हो गया है। मंदिर एव साधारण सीगेसे ११४६४)०४ की राशि व्यय की गई है।

श्री ऋषभदेव स्वामी का मंदिर, वरखेड़ा

इस तीर्थ की व्यवस्था के बारे मे गत वर्ष के कार्य विवरण मे विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया था एव इस हेतु पुनर्गठित उप समिति की घोषणा की गई थी। श्री उमरावमलजी पालेचा के सयोजकत्व मे गठित उप समिति की देखरेख मे इस मंदिर जी के सचालन एव व्यवस्था का कार्य सुचारू रूप मे सम्पन्न होता रहा है।

फाल्गुन सुदी १०, दि० १५ मार्च, १९८१ को वार्षिकोत्सव एव मेले का भव्य आयोजन किया गया। पूजा पढाना तथा साधर्मी वात्सल्य का आयोजन भी पूर्ववत् सम्पन्न हुआ। भोजन व्यवस्था म श्री दानसिंहजी कर्णावट श्री त्रिलोकचन्द जी कोचर एव श्री दलपतसिंह जी छजलानी का योगदान एव यातायात व्यवस्था मे श्री शिखर

चन्दजीकोचर सहित श्री आत्मानन्द सेवक मण्डल की सेवायें विशेष उल्लेखनीय रही हैं ।

इस वार्षिकोत्सव के अवसर पर कुल ६५६३) रु० का चिट्ठा ही हो सका जबकि साधर्मी वात्सल्य पर ८१२६)४० एवं अन्य व्यवस्थाओं पर ३५०६)६४ कुल ११६३३)०४ का खर्चा हो जाने से ५०७०)०४ की टूट रह गई ।

दि० १-४-८० को बरखेडा तीर्थ के हिसाब पेटे १४६४३)६३ जमा थे तथा इस वर्ष की कुल आय ११५१८)४० (८६९०)४० मेला खाते में, ११३०)५० किराया एवं १६९७)५० मंदिरजी के सीगे में) सम्मिलित करने से दि० ३१-३-८१ तक कुल २६४६२)०३ की राशि बनती है । इसके मुकाबले में जो खर्चा हुआ है वह कुल २०१९४)०३ का हुआ है । ११६३३)०४ इस वर्ष के मेले पर, १०१९ २० की गत वर्ष की मेले की टूट को मिला कर १२६५२)२४ तथा ४११४)४१ जीर्णोद्धार पर साधारण सीगे से खर्च किए गए हैं तथा मंदिरजी के सीगे से ३४२७)३८ का खर्चा हुआ है । इस प्रकार वित्तीय वर्ष की समाप्ति दि० ३१-३-८१ को इस खाते में ६२६८) की राशि जमा है ।

पूर्व उप समिति से जो लगभग १६ हजार की उगाई का विवरण प्राप्त हुआ था उसकी वसूली में आशातीत सफलता प्राप्त नही हो सकी है । इस के लिए और भी प्रयास किया जावेगा ।

मेले के अवसर पर होने वाली यातायात की असुविधा एवं मार्ग की कठिनाई को दृष्टिगत रखते हुए महासमिति का यह विचार बना है कि आगामी वार्षिकोत्सव का कार्यक्रम प्रात:कालीन रखा जावे और साधर्मी वात्सल्य का आयोजन सायंकालीन की अपेक्षा मध्याह्नकालीन हो । बसों के जो प्रति बस दो चक्कर करवाए जाते रहे हैं उसके स्थान पर भविष्य में एक बस का एक ही चक्कर कराने की व्यवस्था का भी निर्णय किया गया है । असुविधाओं को टालने एवं मेले के सुव्यवस्थित एवं सफल आयोजन की दृष्टि से उपरोक्त परिवर्तनों को आशा है कि श्री संघ सहर्ष स्वीकार करेगा । इस हेतु सभी का उदार एवं सक्रिय सहयोग अपेक्षित है ।

इस मंदिरजी एवं संलग्न खुली भूमि के बचाव एवं कटाव को रोकने हेतु तालाब की पाल के जीर्णोद्धार हेतु प्रथमतः पांच हजार की राशि स्वीकृत की गई थी उसके मुकाबले में गत वित्तीय वर्ष में ४११४)४१ का व्यय किया गया है । तत्पश्चात् पाल की ओर की दीवार पर पत्थर के कातले लगाने आदि का कार्य पूर्ण हो गया है । इसी का परिणाम है कि इस वर्ष की भीषण वर्षा से तालाब के क्षतिग्रस्त होकर गांव की ओर पानी भर जाने के पश्चात् भी इस मंदिरजी एवं संलग्न भूमि को किसी प्रकार की हानि नही पहुंच सकी है ।

मूल वेदी के तत्काल दोष निवारण एवं मंदिरजी के नव निर्माण हेतु कुछ सोमपुराओं की सलाह ली गई । आनन्दजी कल्याणजी की पेढी को भी सोमपुरा भिजवाने के लिए लिखा गया लेकिन खेद है कि सोमपुरा के आने जाने का मार्ग व्यय, पारिश्रमिक आदि देने का आश्वासन देने के बाद भी अभी तक किसी सोमपुरा को नही भिजवाया गया है । पेढी द्वारा मनोनितयहां के प्रादेशिक प्रतिनिधि को वहां से निर्देश प्राप्त हुआ था कि वे सोमपुरा की सेवायें उपलब्ध कराने की व्यवस्था करें लेकिन अभी तक यह कार्य सम्पादित नहीं हो सका है जिसका उप समिति एवं महासमिति को खेद है । प्रयास जारी है लेकिन क्रियान्विति भविष्याधीन है ।

उपरोक्त कार्यों मे स्थानीय व्यवस्थापक श्री ज्ञानचन्दजी टुकलिया की सेवायें विशेष रूप से उल्लेखनीय रही हैं ।

श्री शातिनाथ स्वामी का मन्दिर, चन्दलाई

इस जिनालय की सेवा पूजा का काय भी सुन्दर ढग से सम्पन्न होता रहा है । मदिरजी के जीर्णोद्धार का कार्य, इस मदिरजी की व्यवस्था हेतु नियुक्त उप समिति के सयोजक श्री चितामणि जी टड्ढा की देखरेख मे सम्पन्न होता रहा और गत वप जो बाहरी भाग के जीर्णोद्धार का कार्य प्रारम्भ किया गया था, पूर्ण हो चुका है जहा तक मूल गम्भारे मे परिवतन एव वेदी के पुनर्निर्माण का सम्बन्ध है, इस बारे में कुछ सोमपुराओ की सेवायें लेन का प्रयास किया गया और उनसे शास्त्रोक्त आधार पर दोष रहित वदी एव गम्भारा बनाने हेतु सलाह ली गई लेकिन विभिन्न सोमपुराओ के विचारो म मतैक्य नही होने से यह काय अभी तक हाथ मे नही लिया जा सका है । आनन्दजी कल्याणजी की पेढी से भी सोमपुरा भिजवाने के लिए निवेदन किया गया था अभी तक यह भी सम्भव नही हो सका है । ज्योहि निश्चित सलाह प्राप्त हो जाएगी यह काय भी शीघ्र ही सम्पन्न कराने का प्रयास किया जायेगा ।

इस बार की भीषण वर्षा से चन्दलाई ग्राम में भी बहुत नुकसान हुआ लेकिन शासन देव की असीम कृपा से मदिरजी को किसी प्रकार की क्षति नही पहुचती है ।

श्री वधमान आयम्बिल शाला

श्री वधमान आयम्बिलशाला का कार्य विभागीय मत्री श्री सुभाषचन्दजी छजलानी की देखरेख में बहुत सुन्दर और सुचारू रूप से सम्पन्न होता रहा है और आराधको की सख्या में भी निरन्तर अभिवृद्धि हो रही है । इस सीगे मे गत वित्तीय वर्ष मे १६,८१७) ६८ की प्राप्ति हुई तथा स्थायी मितियो में रु० ४६२५। प्राप्त हुए हैं । इसके मुकाबले में रु० १५६६६)६५ का व्यय हुआ । इसमें मितव्ययता एव दुरुपयोग को रोकने से यह सम्भव हो सका है। इस प्रकार महासमिति को यह अ कित करते हुए प्रसन्नता है कि दानदाताओ के उदार सहयोग एव कुशल सचालन से इस वर्ष यह सीगा टूट से मुक्त रहा हैं ।

गत वर्ष के प्रतिवेदन म उल्लेख किया गया था कि इस स्थान पर स्थित टिन शेड, लकडिया वगैरा बहुत ही जीर्ण शीर्ण हो गए हैं, ऊचाई कम होने से टिन शेड के कारण आराधको को गर्मी मे बहुत असुविधा होती है जिससे तत्काल पुनर्निर्माण की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी । महासमिति को यह अ कित करते हुए हार्दिक प्रसन्नता है कि यह कार्य भी सम्पन्न हो गया है । निर्माण काय की देखरेख हेतु पाच सदस्यीय उप समिति श्री हीराचन्दजी चौधरी के सयोजकत्व मे गठित की गई थी जिसके सर्वश्री तरसेमकुमारजी जैन, दानसिंहजी कर्णावट, उमरावमलजी पालेचा एव सुभाषचन्दजी छजलानी सदस्य थे । उक्त उपसमिति की देखरेख में यह कार्य बहुत ही सुन्दर, सुदृढ एव सुव्यवस्थित रूप से पूर्ण हो गया है । प्रतिवेदन लिखने तक शेड के निर्माण पर शेड तथा दीवारो आदि के निर्माण पर रु० (७२३१७) व्यय हो चुके थे । चार एगजास्ट पखे भी लगा दिये गए हैं तथा बिजली का सारा फिटिंग भी बदल दिया गया है । इसमे भी अभी तक पाच हजार की राशि व्यय हो चुकी है । इस प्रकार अभी तक लगभग ७५ हजार रु० व्यय किये जा चुके हैं और काय सम्पूर्ण होने तक कुछ राशि और बढने की सम्भावना है । सबसे अधिक आत्म सतोष यह है कि इस निर्माण पर आराधको सहित समस्त श्री सघ द्वारा सतोष एव प्रसन्नता व्यक्त

की गई है। वहाँ के निर्माण कार्य को पूर्ण करने में श्री उदयराम मिस्त्री एव शेड निर्माण में श्री वेदप्रकाश पारीक द्वारा जो अथक प्रयास किया है उसका उल्लेख करना महासमिति आवश्यक मानती है।

अभी तक जो राशि व्यय की गई है वह आयम्बिल खाते, साधारण एवं मणिभद्रजी के कोष में से कर्ज के रूप में ली गई है। वापिस चुकारे हेतु धन एकत्रित करने के लिए यह निश्चय किया गया है कि दानदाताओं के चित्र आयम्बिलशाला में लगाए जावे। इसके लिए ११११) रु० का नखरा निश्चित किया गया है। जो भी दानदाता स्वयं का अथवा अपने परिजनों मे से किसी का चित्र लगाना चाहें, १०"×१२" इंच का रंगीन चित्र १४"×१८" इंचके माउण्ट पर तैयार करवा कर लगवाया जावेगा। चित्र तैयार कराने में होने वाले व्यय की राशि भी उपरोक्त नखरे में ही सम्मिलित है। योजना की घोषणा के साथ ही उत्साहवर्द्धक परिणाम सामने आने लगे है और महासमिति को विश्वास है कि दानदाताओ के उदार सहयोग से यह धनराशि भी शीघ्र ही एकत्रित की जा सकेगी।

अब इसी स्थान पर फर्श दुवारा वनवाना भी आवश्यक समझा जा रहा है और अगले चरण में यह कार्य भी शीघ्र ही हाथ में लेना सम्भावित है।

श्री साधारण खाता:

यह निर्विवाद है कि इसी खाते को सभी प्रकार के विविध खर्चों का भार वहन करना पड़ता है वहां आय के लिए विशेष प्रयत्न अपेक्षित रहते है। इस सीगे में होने वाले व्यय मे निरन्तर वृद्धि होती रहती है और उसके कारण गत वर्षों में चली आ रही टूट भी वढती रही है। इस सीगे में ६३, ९८५) ३७ की प्राप्तियां हुई तथा इसी सीगे के अन्तर्गत आने वाले अन्य श्रोतों से १०,६६०) ६८ की प्राप्तियो को जोड़ने से कुल आय ७४१४७) ७५ बनती है। इसके समक्ष वेतन विजली पानी, वैय्यावच्छ, साधर्मी भक्ति, प्रकाशन आदि को मिलाकर कुल खर्चा ४०२६७) ४१ हुआ तथा बरखेड़ा मेला जीर्णोद्धार, जीवदया मणिभद्र आदि कार्यों में ३०२३०)६१ की राशि व्यय हुई है। इतना सब द्रव्य भार वहन करने के पश्चात् भी इस वर्ष यह सीगा भी किसी भी प्रकार की टूट से मुक्त रहा है तथा पुरानी टूट भी समाप्त हो गई है।

मणिभद्र उपकरण भडार की स्थापना की गई है जो इसी सीगे के अधीनस्थ रहेगा। इससे होने वाली आय भी इसी सीगे मे समायोजित की जावेगी।

साधर्मी भक्ति

सार्धमियों की सेवा हेतु अधिकाधिक द्रव्य अपेक्षित है लेकिन प्राप्तियां उतनी उत्साहवर्द्धक नही है। इस कार्य हेतु पृथक से धन राशि एकत्रित करने का प्रयास भी किया गया लेकिन कुल प्राप्तियाँ ३१४८)१४ की हुई जवकि खर्च ४३९९ ५५ का हुआ। महासमिति को खेद है कि द्रव्याभाव के कारण उदार हस्त से जितना सहयोग दिया जाना चाहिए था वह सम्भव नहीं हो सका। फिर भी जिन वहिनों को स्थायी रूप से महावारी सहायता दी जाती है उसमें वृद्धि की गई हैं। छात्र छात्राओं को शुल्क की राशि एवं पुस्तके उपलब्ध कराई गई है। एवं चिकित्सा हेतु अनुदान भी दिया गया है।

महासमिति इस अवसर पर सभी सक्षम साधर्मी वन्धुओं से करवद्ध निवेदन करती है कि इस सीगे में उदारतापूर्वक सहयोग प्रदान कर अक्षय पुण्योपार्जन के भागीदार वने।

ज्ञान खाता

ज्ञान खाते मे इस वर्ष १३,७६४)६६ की आय हुई तथा व्यय ४८६२)०६ हुआ है जिसमें गत वर्ष मे पुस्तक प्रकाशन हेतु दिया गया योगदान का समायोजन सम्मिलित है।

प्रशिक्षण

धार्मिक पाठशाला

सायकालीन पाठशाला वर्ष भर चलती रही। श्रीमती कमलाबाई पूर्व प्राध्यापिका की अस्वस्थता के कारण उनके स्थान पर श्रीमती चन्दादेवी को नियुक्त किया गया है। पुन यह दोहराने मे सकोच नहीं है कि स्थानीय साधर्मी भाइयो को अपने बालको को धार्मिक शिक्षण दिलवाने हेतु इस पाठशाला का जितना उपयोग करना चाहिए उतना नही किया जा रहा है। बच्चो को इस ओर प्रेरित करने के प्रयास किए जाते रहे हैं फिर भी इस ओर रुचि जागृत होना आवश्यक है।

उद्योगशाला

उद्योगशाला का कार्य भी वर्ष भर सुचारू रूप से चलता रहा है। जैन-अजैन बहिनो ने यहा से सिलाई बुनाई का प्रशिक्षण प्राप्त किया है जो निश्चय ही उनके लिए उपयोगी सिद्ध होगा। अधिकाधिक बहिनें इसका उपयोग करें तभी इसकी सार्थकता है।

पुस्तकालय, वाचनालय एवं ज्ञान भडार

पुस्तकालय में बच्चो के लिए उपयोगी एव ज्ञानवर्द्धक पुस्तको की नई खरीद की गई है। वाचनालय मे दैनिक, साप्ताहिक, मासिक आदि समाचारपत्र मगाए जाते रहे हैं। वाचनालय का किया जाने वाला उपयोग निश्चय ही उत्साहवर्द्धक है।

चित्र दीर्घा एव फोटू संग्रह

चित्र दीर्घा पूर्ववत् कायम है। जैसा कि गत वार्षिक विवरण मे उल्लेख किया गया था कि प्रतिवर्ष ली जाने वाली फोटुए आदि को सुव्यवस्थित एव सुरक्षित करने का दायित्व श्री हरिश्चन्द्रजी मेहता को सौंपा गया है। महासमिति को यह अवित करते हुए प्रसन्नता है कि श्री मेहता सा० ने अब तक सस्था मे उपलब्ध फोटुओं को व्यवस्थित करके वर्षवार क्रमश एलबमो मे स्थिर और सुरक्षित कर दिया है। चित्र दीर्घा को भी और अधिक व्यवस्थित एव सुरुचिपूर्ण बनाने हेतु शीघ्र ही कार्यारम्भ किया जाएगा।

श्री आत्मानन्द जैन सेवक मण्डल

आत्मानन्द जैन सेवक मण्डल की गतिविधिया वर्ष भर सक्रिय रही हैं। मण्डल की विधान की स्वीकृति के पश्चात कार्यकारिणी के चुनाव सम्पन्न हुए जिसमें श्री सुनीलकुमार चोरडिया अध्यक्ष चुने गए। विभिन्न सस्थाओ के विशिष्ठ आयोजनो मे मण्डल के सदस्यों ने सक्रिय सहयोग, और सेवायें दी हैं जिसमे विशेष उल्लेखनीय है श्री महावीर जयन्ति का जुलूस, आमेर, बरखेडा, खोह आदि स्थानों के जिनालयो के वार्षिकोत्सव, महावीर इण्टरनेशनल का अधिवेशन, भारत महामण्डल के जनगणना सम्बन्धी सम्मेलन आदि। १६८१ मे हुई जनगणना मे जैन लिखाने सम्बन्धी कार्य में भी मण्डल के सदस्यो ने उल्लेखनीय कार्य किया है। गत पर्यूषण के अवसर पर निर्मित भावो का निर्माण प्रशसनीय रहा।

श्री श्राविका सघ.

श्राविका सघ का भी पुनर्गठन हो चुका है और अब इसका दायित्व सर्व श्रीमती मदनबाई बाठिया, लाडबाई शाह, मदनबाई साड एव

भागसुन्दरी बाई पर है। श्राविका संघ की जो धनराशि रु० १०,८६०)४५ इस संघ के खातों में जमा थी उसको बढा कर अब १४०००) की राशि स्थायी जमा खाता में ६१ माह के लिए जमा करादी गई है। समय समय पर विभिन्न गतिविधियों के साथ साथ पूजाएं पढाने का लाभ भी श्राविका संघ द्वारा लिया जाता रहा है।

श्री मणिभद्र :

इस संस्था के मुखपत्र "मणिभद्र" की प्रगति संतोषजनक रही है और महासमिति को यह अंकित करते हुए आत्म सतोष है कि अब यह पत्र अखिल भारतीय स्तर पर अपना विशिष्ठ स्थान प्राप्त कर चुका है। इसके नवीन अंक की जिस आतुरता से प्रतीक्षा की जाती है और साधु साध्वी वर्ग सहित विभिन्न संघो से इस हेतु जिस प्रकार की माग आती रही है वह इसकी उपयोगिता को स्वत: ही उजागर करती है। गत तीन वर्षो से कार्यरत सम्पादक मण्डल की इस हेतु की गई सेवाओं का उल्लेख करना महासमिति उचित समझती है।

जैसा कि गत वर्ष के अंक में अंकित किया गया था कि कागज, मुद्रण आदि का अत्यधिक खर्चा बढने एवं विज्ञापन की दरें वही बनाए रखने के बाद भी लगभग डेढ हजार की बचत होना सम्भावित है। गत २२वें अंक के प्रकाशन में शुद्ध बचत १३५१) रु० रही हे और इस बार भी विज्ञापन की दरें वही रखने के पश्चात् भी लगभग ढाई हजार बचत होना सम्भावित है।बचत हुई राशि का समायोजन साधारण सीगे में किया जा रहा है।

"मणिभद्र" के अभी तक २२ पुष्प प्रकाशित हो चुके है और जो नाम रखा वह सम्भवतः श्री सुमतिनाथ जिनालय में प्रतिष्ठित परमप्रभावक महान चमत्कारी अधिष्ठायक देव श्री मणिभद्रजी म० के नाम पर ही रखा गया। पू० आ० श्री ह्रींकारसूरीश्वरजी म० सा० ने मार्गदर्शन प्रदान किया हैं कि "मणिभद्र" शुद्ध नाम नहीं है, इसके स्थान पर "माणिभद्र" नाम हो तो वह संघ की अभिवृद्धि हेतु और भी अधिक उपयुक्त होगा। इस सम्बन्ध में भविष्य में विचार कर निर्णय अपेक्षित है।

आर्थिक स्थिति:

संस्था की आर्थिक स्थिति पूर्ववत् न केवल सुदृढ रही है अपितु उत्तरोत्तर प्रगति की ओर अग्रसर है। स्थायी जमा कोष में गत वर्ष की बढी हुई रकम १,८९,०७०) ४५ से बढ कर इस वर्ष २,६२,३९७) ९५ हो गई है। बचत खाते में भी गत वर्ष की रकम ५३,००८)१२ के मुकाबले में इस वर्ष के अन्तिम दिन यह राशि ६७,६८२)२१ रही है। आय-व्ययक खाते के संलग्न विवरण से स्पष्ट होगा कि इस वर्ष की कुल प्राप्तियां २,४०,४०६)५३ हुई जब कि व्यय १,६२,२३३)६३ का हुआ और इस तरह से बचत की घनराशि ७८,१७२)९० बनती थी लेकिन वर्षो से चली आ रही २३,५७०)०५ की उगाई में से २०२७०)०५ का उगाई का अपलेखन कर देने से शुद्ध बचत ५७.६६१)३५ रही है।

इस वर्ष साधारण, आयम्बिलशाला सहित सभी सीगे टूट से मुक्त रहे हैं।

अन्य संस्थाओं को योगदान :

जयपुर श्रीसंघ यह गौरव का अनुभव कर सकता है कि भारतवर्ष के विभिन्न संघों से अनुदान हेतु यहां बहुत बड़ी संख्या में आवेदन पत्र प्राप्त होने लगे हैं। उन सभी की सेवा करके निश्चय ही यह संघ गौरवान्वित हो सकता है लेकिन अभी तक इतने अधिक साधन नहीं बढे हैं कि

स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने पश्चात् उनकी भली प्रकार से सेवा कर सकें। फिर भी यथा शक्ति सहयोग प्रदान करने का प्रयास किया गया है।

गत वित्तीय वर्ष मे निम्नांकित संस्थाओं को जो आर्थिक सहयोग प्रदान किया गया उसका विवरण निम्न प्रकार है —

१) १४ पिंजरापोलो को २१)रु० प्रति पिंजरापोल–जीवदया से।

२) श्री श्वे० पल्लीवाल जीर्णोद्धार कमेटी हिण्डौन को २१००) देवद्रव्य मीगे से।

३) श्री जालोद ग्राम, त० छोटी सादडी, जि० चितौड को ११०१) देवद्रव्य मीगे से।

४) श्री आगमोद्धारक प्रवचन प्रकाशन समिति अहमदाबाद को ५०१) ज्ञान खाते से।

५) श्री जैन श्रेयस्कर मण्डल, मेहसाना को ५०१) रु० ज्ञानखाते से।

६) श्री सिद्ध क्षेत्र श्राविका संघ पालीताणा को २०१) साधारण मीगेसे।

७) श्री आरम्भडा ग्राम, मीठापुर (गुजरात) को ५०१) साधारण सीगे से।

उज्जैन के पास स्थित हसमपुरा तीर्थ के मूल–नायक भगवान पार्श्वनाथ स्वामी के परिकर निर्माण मे सहयोग देने हेतु आठ हजार रुपयों की राशि स्वीकृत की गई है। परिकर–का निर्माण जारी है और यथा समय यह राशि उपलब्ध करा दी जावेगी।

भेंट कूपन :

गत वार्षिक विवरण में भेंट कूपन जारी करने का जिक्र किया गया था। महासमिति को यह अंकित करते हुए प्रसन्नता है कि इस योजना का हार्दिक स्वागत हुआ है और द्रव्य संग्रह मे भी सुविधा रही है। एक सौ रुपये के कूपनों की प्रथम सीरिज *AA* पूर्ण होने को है और शीघ्र ही दूसरी सीरीज *B B* जारी की जा रही है।

मणिभद्र उपकरण भण्डार

आराधना हेतु वांछित सामग्री शुद्ध विश्वसनीय एवं समुचित कीमत में उपलब्ध कराने हेतु मणिभद्र उपकरण भण्डार की स्थापना की गई जिसकी देखरेख एवं व्यवस्था का उत्तरदायित्व श्री जतनमल जी ढढ्ढा को सौंपा गया है।

इस भण्डार की लाभ हानि का समायोजन साधारण सीगे से किया जावेगा। प्रारम्भिक पूंजी हेतु श्री मणिभद्र कोष मे चार हजार की पूंजी नियत किया गया और गत वित्तीय वर्ष के आठ महिने की शुद्ध बचत मे ढाई हजार की राशि श्री मणिभद्र जी कोष को वापस लौटा दी गई। और शेष बचत को प्रारम्भिक पूंजी में जोडने से यह राशि लगभग उतनी ही बनी हुई है।

आडिटर

श्री राजेन्द्र कुमारजी चतर, चार्टर्ड एकाउण्टेंट द्वारा पूर्ववत् संस्था के हिसाब का अंकेक्षण करने का कार्य सम्पादित किया गया है और आय–कर विभाग को विवरणिका प्रेषित कर दी गई है। उन्हीं के द्वारा अनुमोदित आय–व्यय तालिका एवं चिट्ठा इसके साथ प्रकाशित किया जा रहा है। महासमिति उनकी निस्वार्थ सेवाओं के लिए पुनः धन्यवाद ज्ञापित करती है और भविष्य में भी यथावत् सेवा की अपेक्षा रखती है।

कर्मचारी वर्ग

वर्ष भर कर्मचारी वर्ग निष्ठा, लगन, मेहनत एवं ईमानदारी से अपना कार्य करते रहे हैं और उन्हीं के सतत् सहयोग एवं परिश्रम से समस्त गतिविधियां सुचारु रूप से संचालित होती रही है। श्री सम्पतमलजी मेहता मुनीम एवं श्री

हरिशंकर पुजारी की सेवाये विशेष उल्लेखनीय रही हैं।

महासमिति भी कर्मचारी वर्ग के हितों की रक्षा के प्रति सजग रही है और समय समय पर ईनाम, ऊनी जर्सियां आदि उपलब्ध कराने के साथ उनके वेतन में भी पर्याप्त वृद्धि की गई है। दो कर्मचारियों को उनके ऋण भार से मुक्त कराने हेतु बिना ब्याज की अग्रिम राशी भी उपलब्ध कराई गई है।

महासमिति

वर्तमान में कार्यरत महासमिति गत लगभग ढाई वर्ष से संघ की सेवा करती रही है। अपनेकार्य काल में अभी तक ३९ बैठके हुई और जो भी कार्य किए गए उनका उल्लेख विभिन्न कार्य विवरणों में किया जाता रहा है। अधिक विवेचन करके आत्म-प्रवंचना के दोषी बनने से बचते हुए इतना ही अंकित करना पर्याप्त होगा कि जो कुछ भी कार्य सम्पन्न हो सके है वह समस्त श्रीसंघ के उदार सहयोग, सद्भावना, विश्वास, सहयोग और प्रेम से ही सम्भव हो सके है। जाने अनजाने में जो भी भूलें हुई हों उसके लिए महासमिति श्री संघ से क्षमा प्रार्थी है तथा अपने कार्य संचालन में जिनका भी जो भी सहयोग और सहायता प्राप्त हुई है उसके लिए समस्त श्रीसंघ को धन्यवाद और कृतज्ञता ज्ञापित करती है।

महासमिति के आगामी चुनावः

जैसे वर्तमान में कार्यरत महासमिति द्वारा दि० १० मार्च, १९७९ को कार्य भार सम्भाला गया था और विधानानुसार तीन वर्ष का कार्य-काल आगामी मार्च ८२ में पूर्ण होगा लेकिन उस समय तक आगामी चातुर्मास काल निकट आ जाएगा। महासमिति की यह मान्यता है कि नव निर्वाचित महासमिति का गठन ऐसे समय तक हो जाना चाहिए कि जिससे वह समय पर आगामी चातुर्मास की व्यवस्था कर सके। अतः इस चातुर्मास काल की पूर्णता के पश्चात् यथा सम्भव शीघ्रातिशीघ्र महासमिति के चुनाव करा दिए जावेंगे।

वर्तमान महासमिति संघ के समस्त भाई वहिनों का आव्हान करती है कि वे जिन शासन एवं संघ की सेवा निमित्त आगे आवें और चुनाव में भाग लेकर संघ का विश्वास अर्जित करते हुए इस गुरुतर दायित्व को वहन करने के लिए तत्पर हो।

धन्यवाद ज्ञापन

वर्ष भर की गतिविधियों का संचालन करने में जिन जिन भाई वहिनों का ज्ञात अज्ञात रूप मे सहयोग प्राप्त होता रहा है उन सभी का विस्तार से वचने की दृष्टि से नामोल्लेख किए बिना महासमिति उनकी सेवाओं की मुक्त कण्ठ से प्रशसा करते हुए हार्दिक धन्यवाद प्रेषित करती है।

इन्हीं शब्दों के साथ मैं वर्ष सं० १९३७-३८, क्रमशः सन् १९८०-८१ का यह वार्षिक-विवरण आपकी सेवा में प्रस्तुत करता हूं।

जय वीरम्

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ

घी वालो का रास्ता, जौहरी बाजार जयपुर—302003

चिट्ठा

(दिनाक 31-3-81 के दिन)

गत वर्ष की रकम	दायित्व		चालू वर्ष की रकम	गत वर्ष की रकम	सम्पत्तियां		चालू वर्ष की रकम
2,28,654 87	सामान्य कोष						
	पिछला शेष	2,28,654,87		26 748 45	श्री जायदाद खाते (दुकान)		26,748 45
	जोडी गयी इस वर्ष की बचत	57,661 35	2,86,316 22	10,489 20	श्री अग्रिम खाते		1,899 20
59,813 00	स्थायी मिती आयम्बिल शाला			23,570 05	श्री उगाई खाते		3,068 20
	पिछला शेष	59,813 00		1,89,070 45	स्थाई जमा खाता		
	जोडा गया इस वर्ष का	4,925 00	64,738 00				
1,963 00	स्थायी मिती जोत				स्टेट बैंक आफ बीकानेर जयपुर जोहरी बाजार,	1,67,667 95	
	पिछला	1,963 00			बैंक आफ बडौदा, जोहरी बाजार	54,800 00	
	जोडा गया इस वर्ष	151 00	2,114 00				
14,943 63	श्री वरखेडा तीर्थ				देना बैंक एम॰आई॰रोड	39,930,00	2,62,397 95
	पिछला	14,943 63		835 04	चालू खाते मे जमा		935 04
	इस वर्ष का	11,518 40	26,462 03	53,008 12	बचत खाते मे जमा		
1,860 00	सम्वतसरी पारणा		1,860.00		बडौदा बैंक	5 878 66	

पिछला वर्ष	विवरण			पिछला वर्ष	विवरण		
1,001 00	श्री नवपद पारणा				राजस्थान बैंक	103,14	
	पिछला	1,001.00			स्टेट बैंक आफ बीकानेर एण्ड जयपुर	61,700,39	67,682,21
	इस वर्ष का जोड़ा गया	1,786.00	2,787.00	1,112.00	शान्ति स्नात्र		1,112.00
10,860.45	श्री श्राविका संघ खाते			1,019.50	श्री बरखेडा तीर्थ खाते		20,194 03
	पिछला	10,860.45		727.00	राजस्थान स्टेट इलेक्ट्रीसिटी बोर्ड		727 00
	इस वर्ष जोड़ा गया	3,139 55	14,000.00	1,530.00	किरायादारों में बाकी		180.00
678.94	श्री रमेश चन्द जी भाटिया		678.94		मणीभद्र उपकरण भण्डार		5,598.15
2,500.00	ज्ञान स्थायी कोष		2,500.00		श्री भण्डार खाते		499.00
251.00	श्री सूरजमल जी सांड		—	14,416.08	रोकड हस्तान्तरित		10,414.66
3,22,525.89			4,01,456.19	3,22,525.89			4,01,456.19

भगवानदास पालीवाल
प्रधानमन्त्री

हीराचन्द चौधरी
अध्यक्ष

राजेन्द्र कुमार चतर
चार्टर्ड अकाउन्टेन्टस

Cable : KAPILBHAI
Tele : 72933
Estd. : 1901
INDIAN WOOLEN CARPET FACTORY
Manufacturers of :
Woollen Carpets & Govt. Contractors
All types of CARPET MAKING WASHABLE & CHROME DYED
Oldest Carpet Factory in Jaipur
Dariba Pan. JAIPUR-302002 (India)
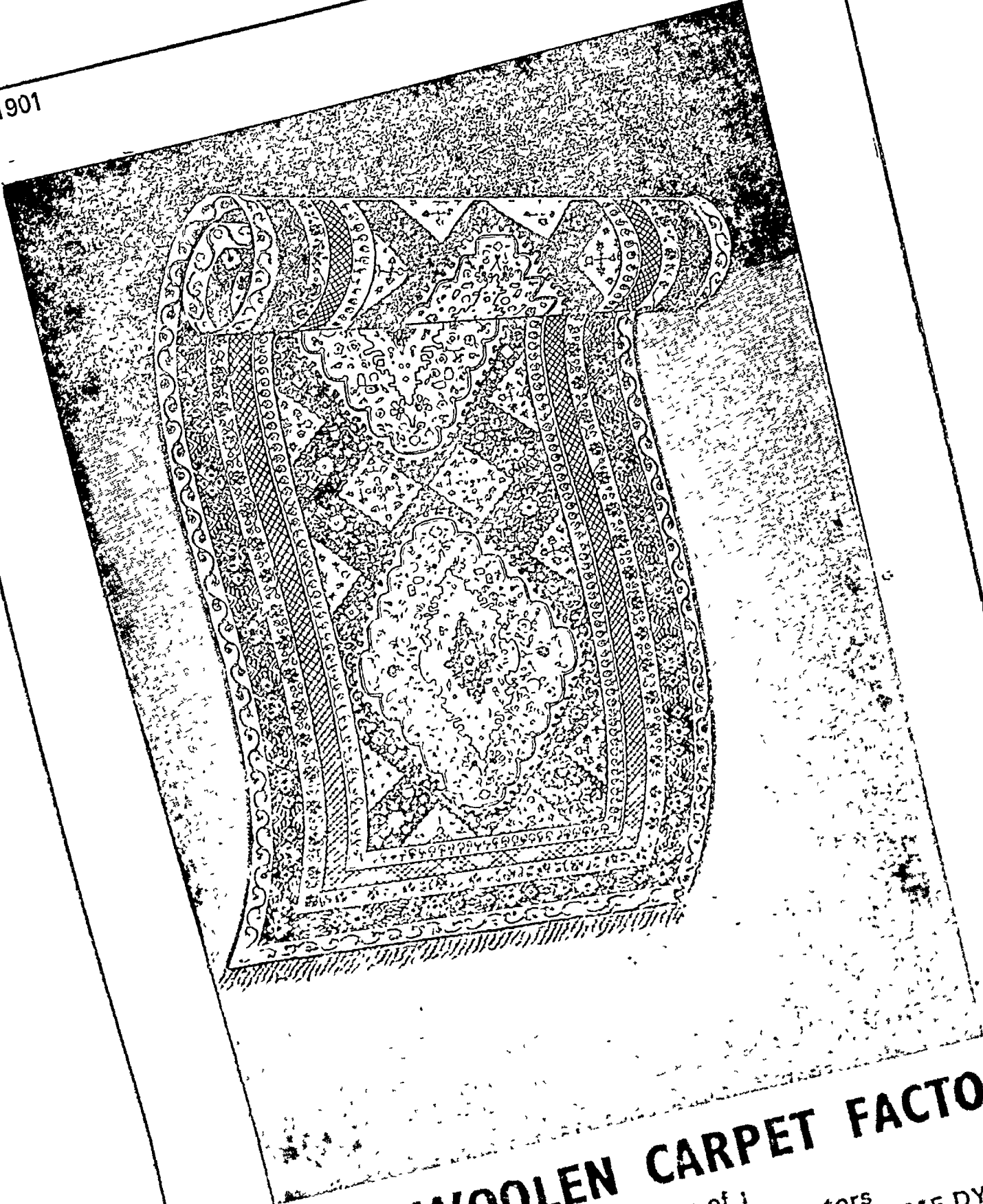
हर प्रकार के सूती, ऊनी, टेरालिन व रेशमी कपडों की धुलाई के लिये सर्व श्रेष्ठ
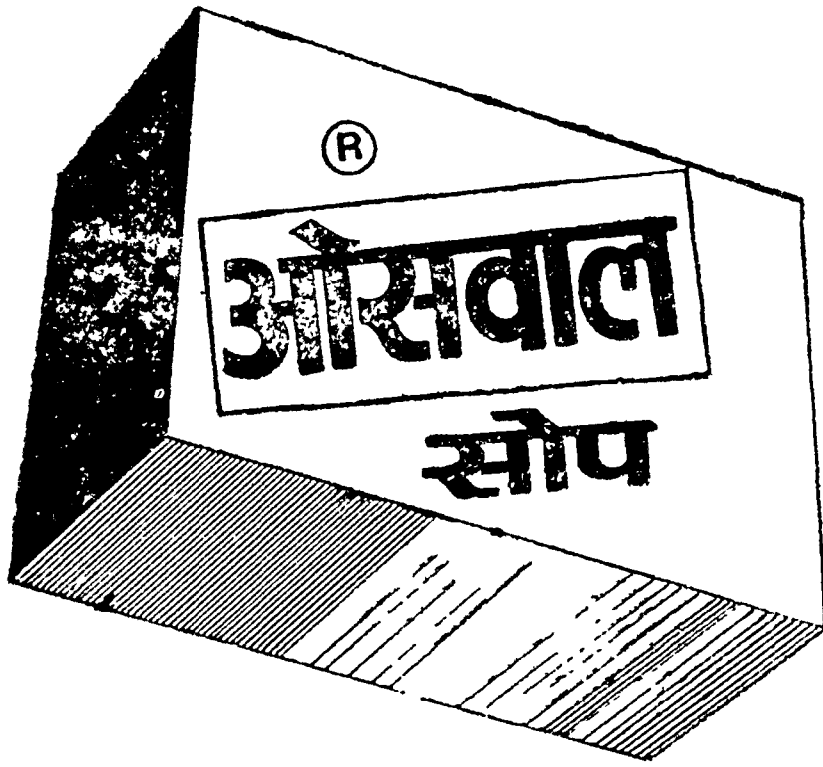
पैसा बचाओ
समय बचाओ
सफ़ेदी बढाओ

ओसवाल सोप फैक्ट्री, २०० इन्डस्ट्रीयल एरिया,
झोटवाडा- जयपुर -302012 फोन - आफिस 65241
फैक्ट्री 842254